

वैशाख २०१९
मई १९६२

# परमानन्द संदेश

वर्ष २
अंक ७

# परमानन्द संदेश

वर्ष २ वैशाख २०१९ | अङ्क ७ मई १९६२

सचित्र आध्यात्मिक, धार्मिक मासिक


## हरिद्वार कुम्भ-अंक


संस्थापक
श्री १०८ सद्गुरु बाबा
शारदाराममुनिजी महाराज

सम्मान्य संरक्षक
महामण्डलेश्वर
श्री स्वामी गंगेश्वरानन्दजी
महाराज

संचालक
श्री अजित मेहता
बी० ई० ( सिविल )

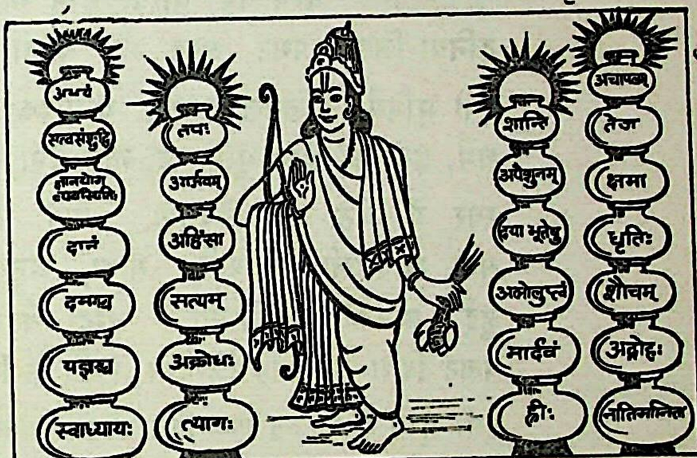
प्रधान सम्पादक
आचार्य भद्रसेन वैद्य

⊙

सम्पादक मण्डल
पं० सरयूप्रसाद शास्त्री
श्री रमेशचन्द्र सिंह सेंगर
श्रीमती अनुसूया देवी
श्री गोविन्दराव जाना

⊙

कार्यालय
शारदा प्रतिष्ठान
सी० के० १५/५१ सुड़िया,
बुलानाला वाराणसी—१


भवन्ति संपद दैवीमभिजातस्य भारत
दैवी सम्पद विमोक्षाय।
दैवी सम्पदा मोक्ष का हेतु है। गीता १६/१-३




चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्
निबन्धायासुरी मता।
आसुरी सम्पदा बन्धन का हेतु है। गीता १६/४-५

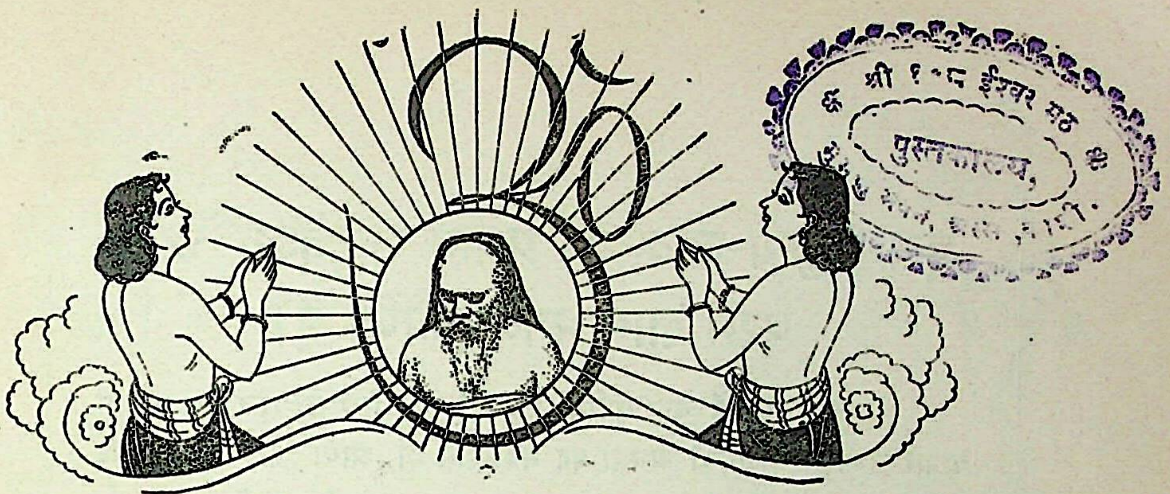
# भारत भूमि महान

स्वामी हंस मुनिजी महाराज

⊙

धन्य यह भारत भूमि महान।
दुनिया जिसकी प्रगट आज भी, करती कीर्ति बखान ॥१॥

इसी भूमिमें कलिमल हरणी, गंगादिक नदियाँ बहतीं।
धर्म, ज्ञान की खान भूमि यह, गान सभी श्रुतियाँ करतीं।
स्वर में बैठे हुये देवगण, गाते जिसका गान ॥२॥
सती, शण्डिली, सावित्री, सीता, अनुसुइया-सी नारी।
हुईं अनेकों पतिव्रता, वृन्दा वैदर्भी गन्धारी॥
पलट दिया क्षणमाहि जिन्होंने, विधि के विविध विधान ॥३॥
इसी भूमि में कपिल कणादिक गौतम व्यास वशिष्ठ हुए।
बाल्मीक नारद सनकादिक, ऋषिवर ब्रह्म वरिष्ठ हुए॥
प्रगट हुये बालक इसमें ही, ध्रुव प्रह्लाद समान ॥४॥
हुये अनेक धर्म धुरंधारी, भूपति इन्द्र समान यहीं।
देखा सुना नहीं जाता था, भारत-सा विज्ञान कहीं॥
है प्रसिद्ध बल हनूमान का, अर्जुन का धनु-बान ॥५॥
इस भारत के मध्य अनेकों पुण्य तीर्थ अघहारी हैं।
काशी मथुरापुरी अयोध्या तीन लोक से न्यारी हैं॥
है अखण्ड भूमण्डल का यह गुरुकुल परम प्रधान ॥६॥
शिव विरञ्चि इन्द्रादि देव ने, जिसका पार न पाया है।
अगुण अपार अलख अविनाशी जाहि वेद ने गाया है॥
इसी भूमि में सन्तन के हित प्रगटे सोई भगवान ॥७॥
इस भारत के पशु पक्षी भी बड़े-बड़े विज्ञानी थे।
काग भुशुण्डी, गरुड़, गीध, गज हनूमान से ज्ञानी थे॥
'हंस' गहो गुरुज्ञान अगर तुम चाहो पद निर्वान ॥८॥



ॐ जय सद्गुरु शारदाराम

# परमानन्द संदेश

दुख खण्डन परमानन्द मण्डन, है इस पत्र का भाव।
पढ़े सुने अमलो बने, सो लख पावै प्रभाव॥

वर्ष २ अङ्क ७ | वाराणसी वैशाख संवत् २०१९ मई १९६२ ई० | मूल्य–५० नये पैसे वार्षिक–५) रुपये

## गङ्गा-गीता-गायत्री

गीता गङ्गा च गायत्री गोविन्देति हृदि स्थिते।
चतुर्गकारसंयुक्ते पुनर्जन्म न विद्यते॥
गङ्गा गीता च सावित्री सीता सत्या पतिव्रता।
ब्रह्मावलि ब्रह्मविद्या त्रिसन्ध्या मुक्तिगेहिनी॥
अर्धमात्रा चिदानन्दा भवघ्नी भ्रान्तिनाशिनी।
वेदत्रयी परानन्दा तत्वार्थज्ञान मञ्जरी॥
इत्येतानि जपेन्नित्यं नरो निश्चलमानसः।
ज्ञानसिद्धि लभेन्नित्यं तथान्ते परमं पदम्॥

गीता, गंगा, गायत्री तथा गोविन्द इन चार गकार संयुक्त देवताओं के हृदय में रहने पर पुनर्जन्म नहीं होता। गंगा, गीता, सावित्री, सीता, सत्यभामा पतिव्रता स्त्री ब्रह्मवल्ली (उपनिषद्) ब्रह्मविद्या, मुक्ति की निवासभुता त्रिकाल संन्ध्या, अर्द्धमात्रा, चिदानन्द स्वरूपमयी भ्रान्ति तथा संसृति को मिटानेवाली अर्धमात्रा (प्रणव) तथा तत्व एवं अर्थके ज्ञानकी उत्पत्ति स्थान परमानन्द दायिनी वेदत्रयी (ऋक, यजुः, साम) इनको जो मनुष्य निश्चल मनसे सदा जपता है वह सदा ज्ञान-सिद्धिको प्राप्त करता है तथा अन्तमें उसे परमपद (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।

# इस मनुष्य-जीवनका प्रधान उद्देश्य और परम लाभ भगवत्प्राप्ति है।

मनुष्यके शरीरमें चाहे झुर्रियाँ पड़ गई हों, सिर के बाल पक गये हों अपार सम्पत्ति वाला हो अथवा वह नवजवान हो, आयी हुई मृत्युको कोई नहीं टाल सकता है। ऐसा समझकर शाश्वत सुखके लिये भगवानके शरण जाना चाहिये। स्त्री, पुत्र, धन आदि सांसारिक वस्तुओंसे मनको हटाकर प्रत्येक जीवके अन्दर व्यापक प्रभुका भजन पूजन, नाम, कीर्तन श्रवण, मनन ध्यान करना चाहिये। यह सारा प्रपञ्च नाशवान और दुःखदायी है।

भगवत्प्राप्तिकी उत्कट इच्छा होने पर पापरहित साधुओंके संगसे मनुष्य सदाके लिये दुःखोंसे छूट जाता है। साधु वे हैं जिनमें लोक-परलोकके विषयोंके प्रति आसक्ति नहीं है, जो काम, क्रोध, मोह, लोभ, आदि से रहित हैं। ऐसे साधुओंके उपदेशसे संसार बन्धन छूट जाता है। भगवत् प्राप्ति हो जाती है।

भगवानके भजनमें लगे हुए ऐसे साधु तीर्थोंमें मिलते हैं। कुम्भ पर्व पर मिलते हैं। साधुओंका दर्शन मनुष्योंका पाप राशिको जलाकर नष्ट कर देता है।

अतः संसारसे डरे हुए मनुष्योंको बन्धनसे मुक्त होनेके लिये कुम्भ जैसे पवित्र अवसर पर तीर्थोंमें जाकर साधुओंका अवश्य दर्शन करना चाहिये।

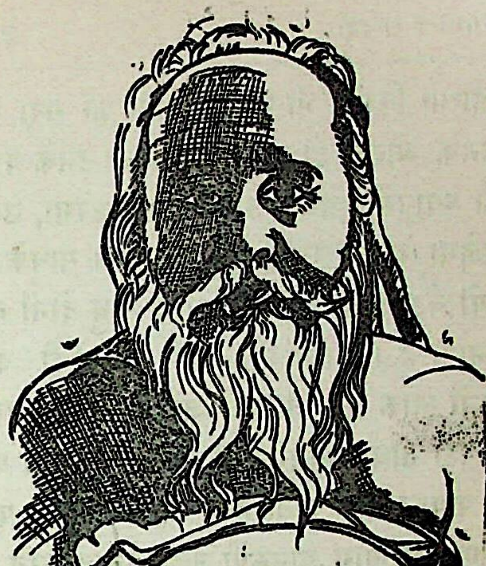
*साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।*
*तीर्थं फलति कालेन सद्यः साधु समागमः॥*

साधुओंका दर्शन बड़ा पवित्र होता है; क्योंकि साधु तीर्थरूप ही है। तीर्थ तो काल पर फल देते हैं, पर साधु समागमका फल तुरन्त मिलता है।

## सन्त वाणी

# सद्गुरु बाबा शारदाराम मुनि जी महाराजका

## प्रवचन



ॐ ब्रह्म को सिरनाय के आत्म करो विचार
सदा सबहि ॐ स्तुति कर रहे वेद पुकार ॥

भाइयो, बहनों, सज्जनों ! आज भागवत् किरणका एक शब्द सुनावेंगे। इसमें मनुष्यके कर्तव्यका वर्णन किया हुआ है।

ॐ अमृत रस जिसको पीना भावै,
साधु संग बैठ बचन सुनो चितलाई।
खरा मारग सन्त बतावै,
जो अन्त में होत सहाई।
मन इंद्रिय को बसकर रखना,
दे सुधर्म चाल चलाई।
जीवत मरै मरकर जीना,
सो मनुष्य अमर पद पाई।
आवागमन का फेरा निपटा,
जब सन्तन भया सहाई।
बहुत दूर से चलकर आया,
अब पड़ा सतगुरु शरणाई।
शारदाराम अमृत ॐ नामा,
सतगुरु दिये पिलाई ॥

ये है भागवत किरण का शब्द। अमृत रस अर्थात् अमृत जो शाश्वत पद है, मुक्ति पद है उसको प्राप्त करनेकी जिसको चाह है, इच्छा है वह सन्तोंके वचनोंको सुने—

फकीरों का सवाल सबके ऊपर।
नहीं जोर जुल्म किसी के ऊपर।

जिस प्रकार फकीर अपना सवाल सबपर करते हैं परन्तु किसी पर भी सवाल पूरा करने के लिए जोर जुल्म नहीं करते उसी प्रकार सन्त महात्मा ईश्वर प्राप्तिके लिए उपदेश करते हैं। उन बचनोंको जो मनको एकाग्र करके सुनेगा उसे अवश्य कुछ न कुछ ज्ञान लाभ होगा। मनकी वृत्ति हमेशा फैली रहती है उस वृत्तिको एकाग्र करके उपदेश श्रवण करना चाहिए। यह निश्चय करें कि सन्तोंका बचन खरा है, शाश्वत है। सन्त भी वही बचन कहते है, वही उपदेश सुनाते हैं जो कल्याणकारी है। सन्त

महात्मा किसी भी तरहकी कथा करें सदा भगवानके ओरकी ही कथा करेंगे। जो उनके वचनों को ध्यानसे सुनेगा, उसपर मनन करेगा, उसपर चलेगा वह चौरासीसे छूट जावेगा। साधुके संग क्यों बैठना चाहिए? क्योंकि साधु दोनों लोक बनाता है। सन्तोंका वचन, सन्तोंकी वाणी दोनों लोक सँवारती है। जहाँ सन्तोंकी मण्डली है वहीं तीर्थ प्रयागराज है। तीर्थोंमें स्नान करने से पापका नाश होता है। जहाँ भी सन्त पहुँच जाएँ वहीं लोग ज्ञानरूपी जलसे स्नान करते हैं।

मनुष्यको चार फल मिलता है अर्थ, काम, धर्म, मोक्ष। झाड़ोंको फल लगनेका स्वभाव है। मनुष्यको भी चार फल प्राप्त करने होते हैं। अर्थ कहनेसे जिसको जो जरूरी होता है। निर्धन को धनकी आवश्यकता होती है। भूखेको रोटी की जरूरत होती है। जो मनमें कामना उठती है, जो मनमें वासना उत्पन्न होती है वह काम है। मायाके सब कर्म इनसे होते हैं ये दोनों भौतिक पदार्थ हैं। धर्म और मोक्ष ये आध्यात्मिक पदार्थ हैं। मन शुद्ध होगा, वृत्ति एकाग्र होगी, धर्म परायण होगा तो मोक्ष प्राप्त होगा।

सन्तोंका वचन हमेशा खरा अर्थात् प्रभु प्राप्तिका ही होता है। खरा सोना वह है जो व्यर्थ न होवे। प्रभु प्राप्तिका मार्ग सन्तोंके सिवा और कोई नहीं बता सकता। यह मार्ग जाननेके लिए क्या करना चाहिए? प्रभुसे मिलना चाहे तो उसके लिए एक तरीका है। मन इन्द्रियोंको सदा बसमें रखना। अब यहाँ एक शंका उत्पन्न होती है—यदि मन बसमें हो जावेगा तो संसारका काम कैसे चलेगा? क्योंकि संसारका कार्य मन, इन्द्रियोंसे चलता है। इनके बसमें हो जाने से संसारका कार्य रुक जावेगा।

बसमें करनेका मतलब है मन, इन्द्रियों को निंदनीय कर्मसे रोक कर सुधर्म पर चलाना। सुधर्म कहते हैं जो अपनी कमाईसे, अपनी मेहनतसे धन, दौलत जमीन, जायदाद, स्त्री, बेटा मिला है यह सुधर्म है। हमेशा सुधर्मपर चलो। गीतामें श्री कृष्ण भगवान अर्जुनसे कहते हैं—हे अर्जुन! तुम अपने सुधर्मसे विचलित नहीं होओ। मान, अपमानकी चिन्ता मत करो।

जो अपनी स्त्रीको लक्ष्मी समझे, कल्याण कारक व्यवहार करे, किसी की निन्दा न करे, इसीको कहते हैं मन इन्द्रियोंको बस में रखना।

"जीवत मरै मर कर जीवै..."

मनुष्य संसारमें खाता, पीता, चलता सोता है परन्तु फिर भी वह मरेके समान है। नगाड़ेकी तरह। जिसकी प्रभुसे लव लग गई है वह जीवित है। एक दृष्टान्त आता है—किसी राज मार्गपर कोई एक मनुष्य रहता था। एक दिन जब वह अपनी तलवारको धार लगा रहा था तो उसके सामनेसे बैंड बाजोंके साथ राजाकी सवारी गई। कुछ समय बाद सिपाहीने आकर उससे पूछा कि भाई यहाँसे राजाकी सवारी गई है? उसने उत्तर दिया—भाई हमें पता नहीं। यह सुनकर सिपाहीको अचरज हुआ, बोला—बैंड बाजोंके साथ राजाकी सवारी गई और तुम्हें पता नहीं। वह बोला—

"हमारा मन तो इस तलवारमें लगा था, हमें राजाकी सवारीका क्या पता।" यह उसका मन जीवित है उसका मन तलवारमें है। उसी प्रकार प्रभुके प्रेमी जीवित हैं। और एक बात है जो मनुष्य अपने मनको प्रभुकी तरफ लगाता है और साथमें शरणागतकी रक्षा, पापियोंका उद्धार करता है वह जीवित है। यदि मनुष्य उपकारको न देखे, दीन पर दया न करे तो मनुष्यमें और पशुमें क्या अन्तर है। गरीबको आधार दो, प्यासेको पानी पिलाओ, भूखेको अन्न दो, नंगेको वस्त्र दो, अपनी ड्यूटी पूरी करो। इसीका नाम है जीवित मरै मरकर जीवै। एक और दृष्टान्त है एक बार दधीचि ऋषिके पास सब देवता गए। सब देवताओंने मिलकर दधीचि जी से प्रार्थना किया—"हे ऋषि श्रेष्ठ! वृत्रासुर राक्षसने देवताओंको बहुत तंग किया हुआ है। यदि आपकी हड्डियाँ मिल जाएँ तो उन हड्डियों से बने हुए चक्रसे वृत्रासुर मारा जा सकता है।" दधीचि ऋषिने सोचा यह शरीर तो एक दिन जाने वाला है। यदि इससे किसीका उपकार और दुष्टोंका संहार हो सके तो श्रेष्ठ ही है। यह सोचकर उन्होंने प्राण त्याग दिये और देवताओंको अपनी हड्डियाँ दे दीं। देवताओं ने उन हड्डियोंसे चक्र बनाया और उससे वृत्रासुर राक्षस मारा गया। दधीचि ऋषिका यश शास्त्र अब भी गाता है।

मनुष्यका जीना और मरना यह आवागमन बना ही है। जब जन्म होता है तो मंगल मनाया जाता है। फिर जब विवाह होता है उस समय भी मंगल मनाया जाता है। परन्तु यह जन्म ही बाधा है। यह जन्म मरण ही दुखका कारण है। इस दुखसे कोई छूटा नहीं। जन्म मरण ही बन्धन है। "सुखके हेतु बहुत दुख पावत।" जन्म हुआ है सुखके तलाशके लिये सुख कैसे मिले? जन्म मरणके चक्करसे छूट जावेगा तो परम पदके सुखको पावेगा। इस जन्म मरणके चक्करसे संतोंके सिवा दूसरा कोई नहीं छुड़ा सकता।

साध के संग पाप पलायन।
साध संग अमृत गुण गायन॥

गुरु नानक देव भी साधुका संग बताए हैं। महापापोंसे संत ही छुड़ाने वाले हैं।

यह जन्म बाधा है, संकट है, दुख है सो कैसे? जीव माताके गर्भमें रहता है वह एक प्रकारका नरक है। एक थैलीमें जीव जकड़ा रहता है उसीमें मल-मूत्र करता है। यह महान संकट है। उस समय फिर जीव भगवानसे प्रार्थना करता है कि "हे प्रभू इस संकटसे हमारा उद्धार करो। संकट से छूटकर हम आपका नाम लेगें।" परन्तु बादमें भूल जाता है। भगवान गीतामें कहते हैं कि हे जीवो जन्मको याद करो, मृत्युको याद करो। यह अनेक जन्मोंका दुख है। जीव पाप करता है और फिर दुखोंको भोगता है। पापी की दृष्टिमें पाप बुरा नहीं, धर्मात्माकी दृष्टिमें बुरा है। जन्म-मरण जरा यह व्याधि है इस व्याधिकी दवा सन्तोंके पास मिलती है। प्रभुके नाम लेनेसे दवा मिलती है। भगवत्गीतामें कहा

गया है कि भक्त अनेकों जन्ममें पुण्य-संचय करनेके बाद अन्तिम जन्ममें मोक्षको प्राप्त करते हैं।

जीव कई बार देवता दानव बनते आए हैं, कभी चींटी कभी पशु बने हैं। नीच कर्म करनेसे नीच योनिको प्राप्त होते हैं। जब जीवात्मा सचेत हो जाता है। जब सत्गुरुकी शरणमें आएगा तो सतगुरुकी कृपासे अनेक जन्मोंके पाप नष्ट हो जावेंगे। सन्तोंके द्वारा मिले हुए प्रभुके नामसे तर जावेंगे। भावार्थ यह है कि प्रभुका नाम अमृत है। इसको भजने से जीव जन्म मरणकी बाधासे छूट जावेगा।

जिसकी रामसे लगन लग गई है। उसके घरमें सदा मंगल ही होता है। वह मंगल स्वरूप ही हो जाता है। उसे सब प्रकारकी सुख समृद्धि प्राप्त होती है। राम निर्गुण सगुण दोनों रूपमें आता है। जो सबमें रम रहा वह राम है। राम शरीर धारण कर सारे विश्वको आराम दिए हैं। सुख स्वरूप किए हैं। विश्वमात्रके सुखके लिए ईश्वर रामके रूपमें अवतरित हुए। अब आगे विचार करनेकी बात है कि मरना तो सबको है। जो रामजीके हाथोंसे मरे हैं उनका उद्धार हो गया, वे सब उत्तम गतिको प्राप्त हुए। रामके स्पर्श मात्रसे जो मरे हैं उन्हें स्वर्गकी प्राप्ति हुई है। इस पर एक प्रश्न उठता है कि जिनको रामजी मारे हैं उनका तो उद्धार हो गया परन्तु उनके कुटुम्ब परिवार तो दुखी हैं? तुलसीदास जी कहते हैं उनके सम्बन्धी इस रूपसे रामको याद करते हैं, दुश्मन रूपसे रामको याद करते हैं। राम नाम सुखदाता है। जब इनकी मृत्यु होगी तो वे भी नामके प्रतापसे सद्गतिको प्राप्त होंगे। राम और ॐ एक ही है इनमें कोई भेद नहीं है। सब रामका गुणानुवाद गाते हैं। राम और ॐ में कोई भेद नहीं है दोनोंका लक्ष्य निराकार ब्रह्म है। अमर पद जो वस्तु है वह प्रभुका नाम है। पानीको पानी भी बोलते हैं। जल भी बोलते और वॉटर भी बोला जाता है परन्तु सबका लक्ष्य एक ही वस्तुकी ओर है। राम, कृष्ण, शिव, सब नाम ब्रह्मके हैं। किसी भी एक नामको जपकर हम प्रभुको प्राप्त कर सकते हैं।

जो जिस धर्ममें हो उसी धर्म पर कायम रहे दूसरे धर्मकी निन्दा न करे। प्रभुसे मिलनेका रास्ता अनेक हैं। परन्तु अपने "अपने धर्ममें सुख पावे सब कोय।" ज्ञानीका यही लक्ष्य होना चाहिए। अपने अपने धर्ममें रहकर प्रभुका नाम जपेगा तो मनुष्य जन्म सफल होगा।

## कुण्डलिया

*जप, तप, साधन ना किया, किया न हरिगुण गान। पाप गठरिया सर पर लादै, भटक रहा अज्ञान।*
*भटक रहा अज्ञान, कहीं चित ठौर न पावै। कांच महल में भटक भटक, कुत्ता जस धावै।*
*कहें "अकेला" राय, राह एको नहिं पइहैं। भवसागर की नाव, बिना हरि पार न जइहैं॥*

रचयिता—रामअधार राय "अकेला" फैजाबादी

# कुम्भ पर्वका धार्मिक महत्व

ले०—महन्त श्री गोपाल दासजी उदासीन आयुर्वेदाचार्य, मुंगेर

भारतीय धर्म और संस्कृतिके आधार पर ही किसी भी पर्व तथा धार्मिक कृत्योंकी पृष्ठ-भूमि आधारित है, सन्निहित है। वेद, पुराण, धर्म शास्त्र, स्मृति आदि उसके पथ-दर्शक हैं। इतिहास उसके सैद्धान्तिक प्रमाण हैं। 'महाजनो येन गतः स पन्था' के दर्शन सूत्र पर ही मानव पूर्वापरका ध्यान रखता हुआ उस विषयमें अव-गाहन करता है, आरूढ़ होकर शान्तिको प्राप्त करता है। भगवत्-अनुरागी बन जाता है।

यह आर्यावर्त सदासे देवताओंका देश रहा, ऋषि मुनियोंका तपोमय कर्म क्षेत्र रहा, अवतारवादके आधारपर, राम, कृष्ण, शंकर, उदासीनाचार्य जगद्गुरु श्री चन्द्रदेव;शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, बुद्ध, आदिका प्रादुर्भाव हुआ। भारतका कोई भी ऐसा स्थान अछूता नहीं रहा जहाँ वेद और पुराण कालीन पुण्य क्षेत्र नहीं हो! इसके अतीत गौरवके इतिहास सारे विश्वमें अनुप्राणित होकर मुखरितकर रहा है। सत्य, अहिंसाके दार्शनिक तत्वपर भारत सदासे विकासोन्मुख रहा है। यह निर्विवाद है।

पर्वोंमें कुम्भ भी एक महान पर्व है, इसकी महत्ता अमोघ है—

इस प्रसंगमें कहा जाता है कि एक समय जब समुद्र मंथनकी बात चली तब मन्दराचल जो अभी भागलपुर जिलेमें स्थित मन्दार पहाड़ आज भी गर्वसे सर उन्नत किये हुए खड़ा है। वासुकी नागको रस्सा बना कर देवता और असुरोंने मिलकर मंथन करना प्रारम्भ कर दिया।

जब इस मंथनसे अमृत घट निकला तब असुर चाहने लगे कि हमलोग पी जाँय पर इन्द्रका पुत्र जयन्त जो कि बड़ा ही चतुर था, वीर था, वह उस अमृत घटको लेकर भागा। जाते-जाते जब वह थक गया तो प्रथम-प्रथम उसने अमृत घटको हरिकी पैड़ी हरिद्वारमें रखा—

अमृतका कुछ भाग उस जाह्नवीके पावन जलमें गिरा। एक तो ऐसे ही हरिद्वारका महात्म्य आपही पुण्य फल प्रद है। जिसमें भी अमृतका निःसरित होना, महान् धार्मिकता है, वहाँके स्नानके सम्बन्धमें पुराणमें वर्णित प्रसंग आता है कि—

अश्व मेधेषु यत पुण्यं यत पुण्यं दान धर्म यो।
तत् पुण्यं लभते प्राणिः स्नात्वा कुम्भ पर्वयो॥

दान पुण्य आदि अश्वमेध यज्ञ करनेका जो फल प्राप्त होता है वह हरिद्वारमें गंगामें स्नान करनेसे मिलता है।

ज्योतिष शास्त्रने खगोलके अनुसार इस

पर्वकी अवधि भी निर्धारित कर दिया है। जिसमें कहा गया है कि—

आयाति द्वादशे वर्षे पूर्ण कुम्भ महतफलं।
षटाब्धे अर्द्ध कुम्भी स्यात जायते पुण्य मंडले॥

इससे यह प्रमाणित हो जाता है कि बारह वर्षमें कुम्भ और ६वें वर्षमें अर्ध कुम्भीका योग आता है।

हाँ तो हरिद्वारके बाद जयन्तने उस कुम्भ को नासिक त्रयंबकेश्वरके कुशावर्तमें रखा जहाँ ब्रह्मगिरिसे गोदावरी निकल कर उस कुण्डको पवित्र करती है।

ब्रह्मवैवर्तमें एक स्थल पर इस कुम्भ पर्वके सम्बन्धमें ऐसा वर्णन आया है कि उस कुशावर्तमें कुम्भ योग तक उषा कालमें स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और महेश स्नान करते हैं। यह कुण्ड मानव मात्रके त्रयतापको हरने वाला है। पापको समन करने वाला है।

असुर कब पीछा छोड़ने वाले थे, जयन्त लड़ाई करता हुआ आगे बढ़ता गया विदर्भकी विदिशा कालिदासकी रामगिरि, राजा भोजकी धारा नगरीको अतिक्रमण कर महाकालके उस उज्जैनमें अपना अमृत घट रखकर युद्धोन्मुख रहा, अमृतका कुछ अंश वहाँ भी गिरा जिससे वहाँ भी शास्त्रानुसार कुम्भ होता है, और मानव मात्र स्नान कर अपने पाप और दुःखसे मुक्ति पाते हैं। लिंग पुराणमें वर्णित है कि जब महा अकाल देशमें पड़ा तब उज्जैन में अकाल नहीं पड़ा था। काक भुसुन्डीजी उस समय वहीं थे उन्होंने भी बिखरे अमृतका पान किया था जिससे वह भी अमरत्वको प्राप्त हुये।

इधर बारह वर्ष तक जयन्त लड़ाई करता हुआ थक सा गया फिर वह प्रयाग राज आया जो सभी तीर्थोंका राजा कहा जाता है। जहाँ भरद्वाजका आश्रम, अक्षय वट, गंगा, यमुना, सरस्वतीकी पावन धारा अविराम गतिसे अद्यावधि प्रवाहित है। उस त्रिवेणीके सुरम्य तट पर जयन्तने घट रखा, लड़ाईयाँ होती रही, महाकालने सोचा कब तक यह देवासुर संग्राम होता रहेगा। महाकालने जयन्तके हृदयमें प्रेरणाकी जिससे वह अपना स्थूल शरीर त्यागकर भौतिक रूप धारणकर बचे हुए संपूर्ण अमृत कुम्भको त्रिवेणीकी उस धारामें उड़ेल दिया, उसमें से कुछ अंश दुर्वादल पर गिरे, वह भी अमर हो गया।

मूर्ख असुर किंकर्तव्य विमूढ़ हो गया। आखिर करता ही क्या? सोचा कि अमृत नहीं है तो यह खाली घट लेकर ही क्या करूँगा। वह आवेशमें आकर उस घट को त्रिवेणीमें फेंककर अपने स्थानको चला गया।

जयन्तने बहुत दिनों तक महाकालके स्थान में तपस्या किया। ज्ञानकी प्राप्ति हुई। और फिर वही जयन्त पंछी तीर्थमें वास करने लगा, "सीता चरण चौंच हत भागा" भी वही जयन्त था। जयन्तकी अमरकीर्ति आज भी हरिद्वारसे लेकर प्रयाग राजतक भारतीय धार्मिक जनके हृदयमें अंकित है।

आज यह कुम्भ महा पर्व हरिद्वारके पावन विस्तृत क्षेत्रमें महीनोंसे मनाया गया है। धर्मानुरागी हिमालयसे कन्या कुमारी तकके लोग वहाँ आते हैं, स्नान करते हैं और अपने पापसे मुक्ति पाते हैं।

जहाँकि यह प्रमाण है "गंगाया दर्शनं पुण्यं" वहाँ कुम्भमें स्नान करनेका कितना बड़ा महत्व है, कितना महान् धर्म है। यह किसीसे छिपा नहीं है।

कुम्भ पर्वका महात्म्य वर्णित है। वह आज भी उसी रूपमें फलदायक है, वेदविहित है। शास्त्र सम्मत है।

कुम्भ पर्वके सम्बन्धमें शास्त्रकारोंने इतना तक कहा है कि—

कुम्भेन समायुक्ता सकला माधवांतिथौ।
गंगायां यदि लभ्येत कोटि सूर्यग्रहेसमा।

चैत्र और वैशाख मासमें वृहत् योगसे जो गंगामें स्नान करता है, वह मानव करोड़ सूर्य ग्रहणके स्नानका फल प्राप्त करता है। इतना ही नहीं बल्कि यह भी कहा गया है कि हरिद्वारके उपस्थित कुम्भ योगपर जो भी प्राणी उस गंगामें स्नान करता है, मज्जन करता, उसके कोटि-कोटि कुल तर जाते हैं।

जो इतनी गरिमासे प्रभावित है उसके लिए आज यह कुम्भका स्नान पर्यटनका एक प्रेरणा श्रोत बनकर धार्मिक राष्ट्रीय भावनाका पृष्टपोषक सिद्ध हो रहा है।

मदान्ध अज्ञानीके लिये तो सारी क्रियायें "हस्ति स्नानमिव" होती है। धर्मो रक्षति धार्मिकः" का जो अकाट्य सिद्धान्त है। उसके धरातलपर यह सिद्ध ही है कि इस ज्योति पुंजके प्रचारक एवं प्रसारक आज इस आर्य भूमिमें ऐसे तो बहुत-सी संस्थायें है पार्टियां हैं, सन्यासी हैं, वैष्णव सम्प्रदायके हैं, पर एक उदासीन सम्प्रदाय ही सर्वव्यापी वरिष्ट सम्प्रदाय है, जो लोक कल्याणके मार्गको आलोकित करानेमें संलग्न रहते हैं।

यहाँ उन महात्माओंके दर्शन होते हैं जो गिरि गुफाओंमें तपस्चर्यामें तल्लीन रहते हैं। उन महात्मा सिद्ध योगीका पदार्पण इसी कुम्भ मेलेके सुअवसरपर तो होता ही है। उन नागाओंकी शोभा यात्रा हर अखाड़ोंका बृहद सुसज्जित जलूस, गगनभेदी नारे, हाथी घोड़ोंका समूह एक नैसर्गिक शोभाको बढ़ाता है।

उस सुरम्य तटपर कहीं अन्न क्षेत्र, कहीं महामण्डलेश्वरों, विद्वान प्रवक्ताओंके सदुपदेशमय प्रवचन, कहीं वदेध्वनि यज्ञ, कहीं भजन कहीं कीर्तन एक स्वर्गिक आनन्दका द्योतक प्रतीत होता है। प्रकृतिकी मन मोहकता में चार चाँद लग जाते हैं।

आर्य संस्कृति और सभ्यताके आधारपर सनातन धर्मकी मर्यादाको अक्षुण बनाये रखने की प्रवृत्ति ही मानवीय गुण कहा जाता है।

उन अखाड़ोंको भी नहीं भुलाया जा सकता जो महीनों पहलेसे आनेवाले साधु सन्तों एवं यात्री वर्गोंके लिये सामान एकत्रित कर लाखों लाखों रुपये व्यय करते हैं। इस कुम्भ पर्व को सफल बनानेके लिये यह प्रयास अवश्य ही स्तुत्य है, अनुकरणीय है।

अन्तमें तो मैं यही कहूँगा कि संसार अनित्य है। शरीर नाशवान है इसलिये समय निकालकर धर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। बहुत तपस्या करनेके बाद

( शेष पृष्ठ १६ पर )

# कुम्भ

श्री भोले बाबा



[ १ ]

क्या देखता है कुम्भ को, क्यों कुम्भ में ना देखता ।
यदि देख लेवे कुम्भमें, निवृत्त हो सब मूर्खता ।।
मिथ्यात्व सब भग जायगा, देगी दिखाई सत्यता ।
यह ही दिखाने के लिए, इस कुम्भ की है कुम्भता ।।

[ २ ]

तू देख बाहर भी छुपा, अपनो महा सौंदर्यता ।
मत देख बाहर देख भीतर, आपकी वैचित्रता ।।
तब कुम्भ है पोला घड़ा, फिर भी दिखाता ठोसता ।
तब कुंभ-कच्चा हाड़ का भीतर बनाता पक्कता ।।

[ ३ ]

तब कुम्भ में है द्वैतता, तब कुम्भमें अद्वैतता ।
तब कुम्भ है मिथ्या क्षणिक, फिर भी सिखाना लिप्तता
तब अल्प भोजी कुम्भ भी देता बता सर्वज्ञता ।
तब कुम्भ के भीतर भरी, है शून्यता सम्पूर्णता ।।

[ ४ ]

तब कुम्भ मांहि राम बैठे, रामगीता गावते ।
तब कुम्भमें ही कृष्ण बैठे, पार्थ शूर बनावते ।।
इस कुम्भमें ही हैं चतुर्मुख, विश्व जो उपजावते ।
शंकर त्रिलोचन भी यहाँ हैं, मोक्ष जो दिलवावते ।

[ ५ ]

लक्ष्मी उमा अरु शारदा, आदिक सभीं हैं देवियाँ ।
इन्द्रादि सब हैं देव भो, शचि आदि उनकी पत्नियां ।।

सनकादि चारों कुम्भमैं, एकत्वदर्शी उक्तियाँ ।
तर्कादि षट् दर्शन यहाँ, उनकी हजारों युक्तियाँ ॥

[ ६ ]

देवर्षि नारद भी यहाँ हैं, नित्य हरिगुण गावते ।
व्यासादि वाल्मीकि आदि भी, इतिहास सर्व सुनावते ॥
क्या ईश हैं क्या जीव हैं, यह भी सदा समझावते ।
क्या बंध हैं, क्या मोक्ष है, यह भी यहाँ बतलावते ॥

[ ७ ]

क्या धर्म और अधर्म क्या, क्या वस्तु शिष्टाचार है ।
यह कुम्भ ही सिखलावता, क्या त्याज्य दुष्टाचार है ॥
विद्या अविद्या साध्य साधन, का यहाँ विस्तार है ।
जो कुम्भ भीतर देखता, सो होय भवसे पार है ॥

[ ८ ]

जो कुम्भ बाहर देखता, छुटती न उसकी मूढ़ता ।
जो कुम्भ भीतर देखता, सो पाय है चातुर्यता ॥
जो शुद्ध होता कुम्भ, बाहर नहीं सो देखता ।
गुरु शास्त्र ईश्वर की कृपासे, प्राप्त करता पूर्णता ॥

[ ९ ]

हो जाय है तो पूर्ण उसको, कुम्भमें सब भासता ।
होता नहीं जो पूर्ण उसको, भासती है भिन्नता ॥
जो भिन्नता है देखता, पावे न क्यों सो खिन्नता ।
जिस कुम्भमें है खिन्नता, उसमें न होय प्रसन्नता ॥

[ १० ]

जिसमैं न होय प्रसन्नता, पावे नहीं सो मुक्तता ।
सुख शान्ति भी पावे नहीं, पावे नहीं निर्वाणता ॥
निर्वाण भोला ? सिद्धकर, सच्चो यही है काव्यता ।
सच्चा यही है कुम्भ अरु, सच्चो यही है कुम्भता ॥

# आध्यात्मिक कुम्भ पर्व !

[ले०—श्री सरयूप्रसाद शास्त्री 'द्विजेन्द्र' (गार्ग्यमुनि)

⊙

हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक इन चार कुम्भपर्व के निर्णीत स्थानों में कुम्भ-योग के समय तत्तत्सम्प्रदाय-सम्मानित साधु-सन्तों के समवाय द्वारा संसार के सर्वविध संकटों के संहार के लिये, तथा देश, समाज राष्ट्र एवं धर्म आदि समस्त जीव के अभ्युदय के लिये भी निष्काम-भावानुसार वेदादि शास्त्रानुकूल अमूल्य दिव्य सदुपदेशों से विश्वकल्याण करना ही इस महापर्व का मुख्य उद्देश्य है।

इसी कारण धार्मिक सज्जन इस पर विश्वास कर प्रत्येक पर्व के समय स्नान-दान-यज्ञ तथा तप आदि के आचरण तथा विद्वानों के उपदेश द्वारा अपना अपना जन्म सफल करते हैं। विशेषकर जो मनुष्य 'पंचाग्नि बिद्या' को जानते हैं अथवा जो वानप्रस्थी, संन्यासी एवं नैष्ठिक ब्रह्मचारी सांसारिक विषय वासनाओं से विरक्त होकर श्रद्धापूर्वक इस पर्व में अनुरक्त रहते हैं, किंवा सत्य-सदाचार का पालन करते हुए उत्तरायण मार्ग से अर्थात् आर्चिमार्ग से सूर्यलोक होते हुए 'ब्रह्मलोक' को जाते हैं, वे कभी वहां से अनेक कल्प तक निवास कर 'क्षीणेपुण्ये मृत्युलोके वसन्ति' के अनुसार पुनः जन्मग्रहण नहीं करते। प्रत्युत् निष्काम भाव से आध्यात्मिक रूप में जो विज्ञानी पुरुष इस महापर्व को समझते और उसका वस्तुतः सेवन करते हैं, वे सौभाग्यवश गुरूपदेश द्वारा ज्ञान प्राप्त होनेके कारण संसारसे सर्वदाके लिए विमुक्त हो जाते हैं। वे पुनः इस संसार चक्रमें नहीं पड़ते। सुतराम् वे ब्रह्ममें लीन होकर 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' को चरितार्थ करते हैं।

इसके विपरीत जो साधारण गृहस्थजन ग्राममें ही रहते हुए अग्नि होत्र आदि वैदिक कर्म करते हुए, वापी-कूप-तड़ागादि प्रतिष्ठा एवं यज्ञ दानादिका आचरण करते हैं, वे दक्षिणायन मार्गसे (धूममार्गसे) 'चन्द्रलोक' को जाते हैं, वहांसे वे पुनः पुण्य क्षीण होने पर स्वर्गलोकका सुख भोगकर बादल आदि बनते हैं, और पृथ्वी पर बनौषधिके रूपमें पैदा होते हैं। तथा अपने कर्मानुसार उत्तम, मध्यम या अधम योनियोंमें जाते हैं।

इस प्रकार जो मनुष्य 'पंचाग्नि विद्या' आदिसे तथा अग्निहोत्र, वापी कूप, तड़ागादि प्रतिष्ठा यज्ञदानादि सत्कर्मोंसे वंचित रहते हैं, वे कीट पतंग आदि नीच योनियोंमें जाते हैं और बार-बार जन्म मरण जन्मक्लेश भोगते हुए आवागमनके चक्रमें पड़े रहते हैं। इसकी विशद चर्चा उपनिषदों में बहुधा मिलती है।

किन्तु जो मनुष्य मृत्यु से पहले ही सद्गुरु के उपदेश द्वारा तत्वज्ञान (ब्रह्मज्ञान) प्राप्तकर लेते हैं, उनकी आत्मा मरणकालमें पूर्वोक्त मार्गोंमें से किसी भी मार्गका अनुसरण नहीं करती अपितु हृदयमें प्राणोंके संघातको आत्मसात् करके ब्रह्ममें लीन हो जाती है। यह सर्वोत्तम गति है जो ज्ञानियों के लिये उपनिषदों में बतलायी गयी है। इसलिये तथोक्त पूर्णकुम्भ या अर्धकुम्भी पर्व मनानेके वास्तविक रहस्यको पूर्णतः समझ लेना चाहिए।

यों-तो इस पर्व पर लोग दूर-दूर से हरिद्वार, प्रयाग आदि पवित्र तीर्थों में आकर गंगा स्नानसे पवित्र होकर श्रेष्ठ विद्वानों द्वारा ज्ञान-प्राप्त करते तथा तप, सत्य, यज्ञ दान आदि शुभ कर्मानुष्ठानों द्वारा यथाधिकार यथारुचि सदाचारका आचरण करते हैं। ऐसा करनेसे मृत्युके बाद उन्हें सर्वोत्तम गति प्राप्त होती है। अधमगति कदापि नहीं मिलती—यह निर्विवाद सिद्ध है। तथापि मनुष्यका दुर्लभ शरीर पाकर आध्यात्म चिन्तन परम आवश्यक है।

अब यहाँ पर कुम्भपर्वके आध्यात्मिक रहस्य पर ध्यान देनेकी बात है। कुम्भके माने घट या कलश होता है। जो किसी समय समुद्रमंथनसे उत्पन्न हुआ है। इसका तात्पर्य यह है कि वह घट यह हमारा शरीर भी है। इसमें भी अमृत भरा है, जिसे योगीजन सदाचार द्वारा पान करते हैं। इसके भी चार स्थान हैं—मूलाधार, नाभिचक्र, हृदय और सदाचार चक्र (मूर्द्धास्थान)। मूलाधारसे नाभि, नाभिसे हृदय और हृदय से मूर्द्धाकी श्वास प्रक्रिया द्वारा चढ़ाईका नाम कुम्भकी चढ़ाई है। यह भी १२ वर्ष पर अर्थात् सूर्य चन्द्रकी गतिद्वारा गुरुके प्रभावसे अपने हृदयाकाशमें हुआ करता है, जो अनुभवगम्य है। अस्तु—

इस विचित्र कुम्भकी उत्पत्ति संसार-सागरसे हुई है; क्योंकि लोकमें भी यह प्रसिद्ध है कि समुद्रमंथनसे ही धन्वन्तरिने सुधापूर्ण कलश पाया था, जिसके लिये देव-दानवोंमें महानयुद्ध हुआ। इस रहस्य को इस प्रकार समझिये—

पर्वके समय उपस्थित जीवसमुदाय ही यहाँ 'समुद्र' के रूपमें है। उसमेंसे प्रकट हुए अमृत रूपी तत्त्वज्ञान को जाननेवाले श्रेष्ठ विद्वान ही 'धन्वन्तरि' (विष्णु भगवान्) हैं। अपने शरीरके भीतर तमोगुण प्रधान रूप इन्द्रियगण ही असुर है। वे ही इन्द्रियाँ जब सत्वगुण प्रधान स्वरूप हो जाती हैं, तब वे 'देव' कहलाती हैं। इस प्रकार अपने शरीरके भीतर इन्द्रियोंका जो परस्पर विरोध होता रहता है, यही 'देवासुर' संग्राम है।

इसलिये मनुष्य को चाहिये कि वेदान्त-उपनिषद्के अध्ययन तथा गुरूपदेश, सत्य, ज्ञान एवं तपः साधन आदिके आचरण द्वारा अपने इन्द्रियोंका निग्रहकर तामस भाव अथवा आसुरी सम्पत्ति पर विजय प्राप्तकर सात्विक भाव अर्थात् दैवी सम्पत्ति को प्राप्त करें। ऐसा करनेसे ही मनुष्य 'अमृत कुम्भ' अर्थात् पूर्ण

ज्ञानकी प्राप्ति द्वारा 'मोक्ष' का अधिकारी बन सकता है।

यह पूर्णज्ञान अधिकसे अधिक बारह वर्षमें मन्द-बुद्धि को भी प्राप्त हो सकता है पर तीव्र तथा मध्यम बुद्धिके मनुष्य तो थोड़े समयमें भी पूर्णज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। बारह वर्ष अथवा देवताओंका बारह दिन ही प्रामाणिक समय रखा गया है। अतः साधक पुरुष कुम्भके समय यथारुचि श्रेष्ठ ज्ञानियोंसे 'ज्ञान-दीक्षा' या सत्य-तप आदि आचरणका उपदेश लेकर बारह वर्ष तक उसका अभ्यास करता हुआ सर्वप्रथम अपने मनके अधिष्ठातृ-देव 'चन्द्रमा' की उपासना द्वारा मन को एकाग्र करे। तत्पश्चात् सूर्यमण्डलमें विराज मान जो ब्रह्म है, वह मैं ही हूँ--इस प्रकार अभ्यास करे। तब गुरूपदेश द्वारा प्राप्त ज्ञान रूपी 'अमृत-कुम्भ' का नाश कभी नहीं होता और वह ज्ञानामृत सदा अक्षय बना रहता है, उसके पानसे मनुष्य अमर (देव) बन जाता है। इसीका नाम सदाचार से अमृत-पान करना कहा जाता है।

पुराणोंमें जो बारहस्थानोंमें कुम्भपर्व माने गये हैं, वे अपने शरीर के भीतर ही हैं-- यथा ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, १ मन और १ यह पार्थिव शरीर। इस प्रकार अमृत कुम्भ रूपी पूर्ण ज्ञान प्राप्ति-साधक होनेके कारण कुम्भपर्व, बारह स्थान माने गये हैं। जिनमें मनुष्योंको पापनिवृत्तिके लिये चार पर्व पृथ्वी पर ( भारत में ) और आठ पर्व देवलोकमें माने जाते हैं। अथर्व वेदमें इन्हीं चारोंको ओर संकेत किया गया है। 'चतुरः कुम्भाश्च-तुर्धा ददामि। अथर्ववेद ४।३४।७ कुम्भपर्वमें सूर्य, चन्द्रमा तथा गुरुके संयोग होनेका मुख्य तात्पर्य या रहस्य यही है कि साधक सूर्य ( इड़ा ), चन्द्र ( पिंगला ) नाड़ियों द्वारा गुरु ( सुषुम्ना ) के संयोग से प्राण क्रिया द्वारा पूर्ण कुम्भ ( ज्ञानामृत) को प्राप्त कर अपने जीवन को सफल करें। और हरिद्वार-क्षेत्र ( मूर्द्धास्थान ) स्थित पूर्ण कुम्भका स्नान अवश्यमेव करें।

---

## कुम्भपर्व का धार्मिक महत्व

( पृष्ठ ११ कालम २ से आगे )

मनुष्य तन मिलता है। इसमें धर्माचरण नहीं किया तो समयका चूका मनुष्य और वृक्षका चूका बन्दर कहीं भी त्राण नहीं पाता, इसलिये इस कुम्भके धार्मिक महत्वपर गंभीरतापूर्वक विचार करते हुए धर्मानुष्ठान करना चाहिये और अपने जीवनको सफल बनाना चाहिये।

# मंत्र साधना और ऋद्धि सिद्धि

ले०—ज्वाला प्रसाद

⊙

मंत्र क्या है ? मंत्र एक शब्दों का समूह है, जो अपना किसी न किसी प्रकार का अर्थ रखता है। उन शब्दों के अर्थका साकार होना ही मंत्र का सिद्ध होना कहा जाता है ! मंत्र का जपना अर्थात् भगवत भजन करना अत्यन्त आवश्यक है हालांकि वर्तमान कालके मनुष्यों का मंत्रों से विश्वास उठ गया है और जिनका है भी, वे श्रद्धा व विश्वास न होने के फलस्वरूप उसमें सफल नहीं होते। परन्तु उनका यह नितान्त भ्रम है। गुसाई श्री तुलसीदास जी कहते हैं कि :—

मंत्र महा मणि विषय ब्याल के।
मेटत कठिन कुअंक भाल के॥

यहाँ यही बतलाया गया है कि केवल मंत्र (शब्द) ही मनुष्य का हर लक्ष्य पूरा कर सकता है !

अनन्त आकाश वायु में जीवनशक्ति (अमृत) परिपूर्ण है, जिससे सब प्राणी जीवित हैं ! वायु में जीवन शक्ति होना विज्ञान की दृष्टि से सिद्ध हो चुका है और यह भी सिद्ध हो चुका है कि प्रत्येक वस्तु के परमाणु हैं और वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म होनेसे अदृश्य हैं ! वही परमाणु एकत्रित हो जाने से वस्तु साकार हो जाती है ! प्रत्येक वस्तु के परमाणु इस अनन्त आकाश वायु-सागर में परिपूर्ण जीवन शक्ति द्वारा विचर रहे हैं।

यह भी स्पष्ट है कि शब्द से धक्का लगता है और शब्द जितना तीव्र तथा कोमल होता है उसी के अनुसार शब्द के धक्के का छोटा व बड़ा प्रभाव पड़ता है। अनन्त आकाश वायु सागरमें किसी भी प्रकार का शब्द हो, स्पर्श होते ही लहर उठती है और लहर से परमाणुओं में धक्का लगता है।

आयुर्वेद और योग विद्या (प्राणायाम इत्यादि) का मुख्य उद्देश्य यही है कि हमारी प्राण-वायु (अमृत शक्ति) शरीरके प्रत्येक मर्म भाग में प्रवेश करे जिससे कि मन की छिपी हुई ऋद्धियाँ सिद्धियाँ जाग्रत हों और शरीर का स्वास्थ्य ठीक बना रहे। हमारी चेतना इतनी विशाल और ऋद्धियों सिद्धियों की कोष है कि वह उतना काम नहीं कर पाती जितना कि उसे करना चाहिए। हम अपने दिमाग की पूरी शक्ति से काम नहीं ले पाते और न ऐसी तरकीब ही हमें मालूम है कि जिससे दिमाग की सब शक्तियों को जाग्रत कर सकें। यद्यपि योग विद्या ने प्राण शक्ति से आवश्य-कतानुसार काम लेने और सिद्धियों को जाग्रत करनेकी क्रियाको बताया है; परन्तु उस विद्या को हर कोई बिना गुरुके नहीं जान सकता

और न उसके जाननेकी प्रत्येक को श्रद्धा ही है। इससे कुछ महर्षियोंने प्राण उपयोग रहस्य को गुप्त रखकर परमात्माका नाम (जो ओम् शब्दमें विद्यमान है) जपनेका उपदेश किया है और प्रत्येक मनोरथ पूर्ण करनेका महत्व नाम जपनेमें बताया है। शब्द उच्चारण करने या मंत्र जपनेसे शरीरके प्रत्येक परमाणुमें गति उत्पन्न होती है, अर्थात् परमाणु चलते हैं और गतिसे गर्मी उत्पन्न होती है, गर्मीसे शरीरका स्वास्थ्य ठीक बना रहता है। अत्यन्त गर्मी पहुँचानेसे यानी नाम जपनेसे दिमागकी गुप्त ऋद्धि-सिद्धिका कोष खुल जाता है और उससे हम जैसा चाहें वैसा काम ले सकते हैं। ऐसी क्रिया करने वालों को ही महात्मा कहते हैं और महात्माओंने उपरोक्त क्रिया को ही तपस्या कहा है और वह इसलिए कि शब्द उच्चारणसे धक्का, धक्कासे गति, गतिसे गर्मी और गर्मीसे विकास प्रत्येक वस्तुका होता है और यही तप है जो ऋद्धि-सिद्धिको देनेवाला है।

गर्मी अर्थात् तपस्या ही कुल काम करने वाली है। वह गर्मी शब्दोंसे उत्पन्न होती है। इच्छा या शब्द मनसे होता है, मन प्राण शक्ति के आश्रित है और प्राण शक्ति आत्मासे सम्बन्धित है तथा आत्मा परमात्मासे। चूँकि गर्मी का कारण सूर्य है और सूर्यका कारण परमात्मा है अतः मन, आत्मा, प्राण, सूर्य और परमात्मा कार्य व्यवहारमें अलग-अलग भासते हुए भी एक हैं, एकके बिना दूसरा नहीं रह सकता। इनमेंसे जहाँ एक है वहीं सब हैं अर्थात् एक ही वस्तुके सब पर्यायवाची नाम हैं, जो शब्दोंसे जाग्रत किये जाते हैं, जिसकी क्रिया मंत्र जपना (परमात्माका नाम लेना) है जो शब्दोंमें विद्यमान है जैसे कि वेदोंने ईश्वरका रूप नहीं बतलाया है बल्कि उसका नाम ॐ शब्दमें विद्यमान होना कहा है। इसलिए सबका कारण शब्द ही है।

शब्द उच्चारण करने या मंत्र जपनेका प्रभाव सबसे पहले मंत्र जापकके शरीरपर पड़ेगा अर्थात् सबसे पहिले शरीरके जीवन परमाणु गरम होकर प्रत्येक गुप्त और प्रकट नस, नाड़ी और तन्तु इत्यादि तथा इससे भी सूक्ष्म नासाजार में गर्मी पहुँचायेंगे जिससे वे ठीक-ठीक स्वास्थ्यवर्द्धक क्रियायें करने लगेंगे। फिर अधिक मंत्र जपनेसे बाहरके जीवन शक्ति परमाणुओंमें धक्का लगना आरम्भ होगा और लगातार धक्का लगनेसे वे वायु परमाणु अत्यन्त गरम हो जाते हैं। अधिकसे अधिक गर्मी पहुँचानेसे वह गर्मी अपने कारणमें लय होती है अर्थात् सूर्यकी तरफ आकर्षित होती है और फिर कारण (सूर्य) से वह शक्ति जापकको वापस प्रदान होती है, जिस इच्छासे शब्द या मंत्र उच्चारण किया गया है अर्थात् वह इच्छा जापककी पूर्ण हो जाती है। ऐसी ही क्रिया प्रत्येक शुभाशुभ शब्द उच्चारणकी है।

तपस्याका रहस्य भी यही है और इसी कारण तपस्वियोंके शब्दश्राप तथा आशीष तत्काल प्रभाव दिखाते हैं, क्योंकि उनके शब्द अधिक गर्मी पाये हुए होते हैं जो कि एक ही

(शेष पृष्ठ २४ पर)

# आहतनाद और अनाहतनादकी अनुभूति

आचार्य बृहस्पति

भारतीय मनीषियोंकी दृष्टिमें आकाशका गुण शब्द या नाद है। अनन्तानन्त कोटि ब्रह्माण्डोंमें आकाश व्याप्त है। इसी सर्वव्याप्तताके कारण आकाशके गुणको नादब्रह्म कहा गया है। यह नाद ब्रह्म-योगियोंका उपास्य है। और वे अपने हृदयाकाश में स्वयंभू अथवा अनाहत रूपसे निरन्तर गुंजित होने वाले इस नादका साक्षात करके परमानन्दकी अनुभूति करते हैं।

पूर्वोक्त अनाहत नादका श्रवण गुरुके द्वारा उपदिष्ट मार्गसे केवल योगी ही किया करते हैं। अतएव यह नाद न तो लोक-व्यवहारका कारण होता है और न लोकरंजनका।

नादसे वर्ण, वर्णोंसे शब्द और शब्दोंसे वाक्य-समूहोंकी सृष्टि होती है। वाक्य-समूह ही भाषा है और वही लोक-व्यवहारका कारण या माध्यम है। इसलिये हमारे प्राचीन आचार्य लोकत्रयी को नादाधीन कहते रहे हैं।

यह स्पष्ट है कि भाषा अपने भावोंके व्यञ्जन और अन्य व्यक्तियोंके भावोंके परिज्ञानका एक पर्याप्त सफल साधन है, परन्तु कोई वाक्य-समूह अपने वास्तविक तात्पर्यका तबतक बोध नहीं कराता, जबतक कि उसका उच्चारण यथोचित रूपमें न किया जाए। एक अच्छा अभिनेता सम्वादोंके यथोचित उच्चारणसे नाटककारके भावोंको जहाँ सजीव-सा करके उपस्थित कर देता है, वहाँ एक अनधिकारी अभिनेता सम्वादोंके भावकी हत्या अपने काकुदोषके कारण सफलतापूर्वक कर देता है।

'काकु' शब्दसे हमारा तात्पर्य यहाँ वाक्य के उच्चारणके समय यथास्थान होने वाले ध्वनिके प्राकृतिक उतार-चढ़ावसे है। नाट्य-शास्त्रमें तो काकु-विचार पर एक अध्याय ही पृथक दिया हुआ है।

कुछ ऐसे नाद हैं, जो भाषाकी परिधिमें नहीं आते, लेकिन न केवल भावोंका बल्कि उनके परिणामों तकका बोधन करनेमें सफल होते हैं। कराहट, सीत्कार, हुँकार इत्यादि अनेक ध्वनियाँ मानसिक भावों को व्यक्त करती हैं और काकुभेदसे इनके द्वारा प्रदर्शित भावोंमें भी भेद हो जाता है।

मानवकी बात छोड़िए, यदि हम तिर्यक योनि प्राणियोंके जीवनपर भी विचार करें, तो स्पष्ट हो जाएगा कि प्रातःकाल होनेपर चहचहाते तथा बाड़ेमें बिल्लीके घुस आने पर रव करते पक्षियोंके विभिन्न नाद उनकी प्रसन्नता अथवा त्रस्तता को स्पष्ट प्रकट करते हैं। स्वामीके पैर को सूँघ कर कूँ-कूँ करते खटका होनेपर भौंकते, ईंट पड़नेपर चिल्लाते हुए कुत्तोंकी ध्वनियाँ पृथक हैं और उनके मन में उठने वाले भाव विशेषोंका द्योतन करती

हैं। आचार्य अभिनवगुप्तने इसीलिए कहा है कि भाषा कभी-कभी भावका बोधन कराने में असमर्थ रहती हैं, परन्तु भाषाकी परिधिसे बाहर रहने वाले अनेक नाद भावोंकी वास्तविक अभिव्यञ्जनामें कभी असफल नहीं होते। शब्दकी शक्तियों पर विचार करते समय आनन्दवर्द्धनने यह विचार व्यक्त किया है कि संगीत प्रयोज्य स्वरोंका समुच्चय अवाचक होनेपर भी असन्दिग्ध रूपमें व्यंजक होता है। आचार्य आनन्दवर्धनके इस कथन को वैयाकरणोंका भी समर्थन प्राप्त है।

नाद-रूपोंकी इस अभिव्यञ्जना-शक्ति एवं उनके साथ-साथ होनेवाले सापेक्ष प्रयोगसे व्यक्त होतेवाली मनःस्थितियों पर हमारे पूर्वज मनीषियोंने गम्भीर विचार किया था और वे कुछ ऐसे तथ्योंका दर्शन करनेमें समर्थ हुए थे, जो सार्वभौम एवं त्रिकालबाधित थे।

अबतकके विचारका निष्कर्ष यह है कि जहाँतक एक ओर वाक्य अर्थका प्रकाशन करने में किसी सीमा तक समर्थ हैं, वहाँ कुछ ऐसे नाद भी भावोंकी अभिव्यज्जना करने में समर्थ हैं, जो भाषाकी परिधि में नहीं आते। यदि भाषा एवं नादमात्रका अनुकूल संयोग हो जाए तो निस्सन्देह 'स्वर्णगन्धः' वाली कहावत चरितार्थ होगी।

अलंकार-शास्त्रमें गुण-विशेषके लिए वृत्ति-विशेषका जो विनियोग किया गया है, उसके मूलमें भी यही तत्व है।

'गीत' का पारिभाषिक अर्थ उसके प्रचलित अर्थसे भिन्न है। यथानियम प्रस्तुत किया हुआ स्वर-सन्निवेश 'गीत' भी भाव-विशेष अथवा भाव-समूहका व्यञ्जक होता है। आनन्दवर्द्धनने इसी गीतको 'अवाचक' परन्तु 'व्यञ्जक' कहा है। वैसे बोलचालमें भी नाद का उतार-चढ़ाव स्वाभाविकरूपेण होता है और इस उतार-चढ़ावमें गीत-प्रयोज्य स्वरोंका एक अस्थिर रूप रहता है। यही अस्थिरता बोलचाल को गानसे पृथक करती है। यदि इस उतार-चढ़ावमें गीत-शास्त्रके अनुसार पूर्ण यथास्थानता आ जाए, तब तो वह बोलचाल न रहकर गान की संज्ञा ग्रहण कर लेगा। गानमें ध्वनियों अर्थात गीत-प्रयोज्य स्वरोंकी यथास्थानता प्रधान होती है और उस दशामें भी वह एक सीमा तक भाव-व्यञ्जनासे समर्थ होती है। इसलिए गीत का एक भाषा-निरपेक्ष अस्तित्व भी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि योग नादके अनाहत रूप पर विचार करता है तथा शब्द-शास्त्र, अलंकारशास्त्र और गीत-शास्त्रके विचारका विषय नादका आहत रूप है। शब्द-शास्त्रका प्रधान विषय शब्दोंकी उत्पत्तिके कारण और प्रक्रियाका बोधन करना है। यह शास्त्र शब्द और अर्थके वास्तविक सम्बन्ध पर विचार करता है। अलंकार-शास्त्र या साहित्य शास्त्र शब्दोंके प्रयोगके परिणाम स्वरूप होने वाली उनकी अर्थ सम्बन्धिनी बिभिन्नता और उनके कारणोंको अपने विचारका विषय बनाता है और गीतशास्त्र नादके उस रूपका प्रयोग सिखाता है जो भाषा की परिधिमें न आनेपर भी भावका व्यञ्जक होता है।

( शेष पृष्ठ २४ पर )

# भगवद्भक्तिका स्वरूप

लें०—जयकान्त झा

"यस्य स्मरणमात्रेण जन्म संसार बन्धनात् ।
विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥"

"जिसके स्मरण मात्रसे मनुष्य आवागमन रूप बन्धनसे छूट जाता है, सबको उत्पन्न करनेवाले उस परम आत्मीय प्रभु श्री विष्णु को बारम्बार नमस्कार है।"

परमात्माकी प्राप्तिके लिए शास्त्रोंमें भक्तियोग, ज्ञानयोग, अष्टांगयोग आदि बहुतसे उपाय बतलाये गये हैं। किन्तु भक्तियोग सबसे सुगम होनेके कारण मनुष्योंके लिए सर्वोत्तम है। भक्तियोगमें स्त्री, पुरुष, बालक और सभी वर्ण-आश्रमके मनुष्योंका अधिकार है और सबके लिए यह सहज भी है। कैसा भी पापी क्यों न हो, भगवानकी भक्तिके प्रभावसे उसका शीघ्र ही उद्धार हो जाता है। श्री भगवान्ने कहा है :—

"अपि चेत्सुदुरुचारो भजते माम् अनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्य सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥"

"यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है—अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है।" इसी प्रकार भगवद्भक्तिके प्रभावसे नीचसे नीच जातिवाले का भी उद्धार हो सकता है। श्री भगवान् कहते हैं—

"मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य योऽपि स्युः पापयोनयः
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यान्ति परांगतिम्॥"

अर्थात् स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि चांडालादि भी भगवद्भक्तिके प्रभावसे परम गति को प्राप्त होते हैं।

जिनकी मृत्यु निकट आ पहुँची है उन्हें भी भगवान्की स्मृतिसे तत्क्षण परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। गीता में कहा है—

"अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्रसंशयः ॥"

अर्थात् जो पुरुष अन्तकालमें मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीर त्याग करता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूप को प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

अतः भगवत्स्मृतिके प्रभावको ध्यानमें रखते हुए हमें अपना प्रत्येक कार्य भगवान्का स्मरण करते हुए ही करना चाहिए। सांसारिक कार्यमें भी नित्य निरन्तर भगवानका स्मरण होते रहना चाहिए। सदैव भगवानकी स्मृति बनी रहे इसके लिए भगवान्में अनन्य प्रेम, सत्पुरुषोंका संग, सच्छास्त्रोंका अध्ययन एवं भगवन्नाम जप आदि विशेष रूपसे सहायक

हैं। जो एकमात्र भगवानका ही अनन्य स्मरण करता हैं, उसकी सम्पूर्ण विघ्न-बाधाओंका नाश होकर उसे शीघ्र ही भगवत्प्राप्ति हो जाती है।

हमें संसारके उच्चसे उच्च पद क्यों न प्राप्त हो जायँ किन्तु हमारी भूख तब तक नहीं मिटती जब तक हम अपने परम आत्मीय भगवान् को न प्राप्त कर लें। भगवान्के सिवा सभी अपूर्ण हैं। भगवान पूर्ण होते हुए भी सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति अकारण ही प्रेम और कृपा करनेवाले परम सुहृद हैं। साथ ही वे सर्वज्ञ, सर्वव्यापी और सर्व शक्तिमान् भी हैं। उन सर्वसुहृद प्रभु पर ही निर्भर होकर जो उनकी भक्ति करता है; वही सच्चा भक्त है।

भगवद्भक्तिकी प्राप्ति संतोंके संगसे अनायास ही हो जाती है, क्योंकि संत महात्माओंके यहाँ परम प्रभु परमेश्वरके गुण, प्रभाव और तत्वकी कथाएँ होती रहती हैं। भगवान्की कथा जीवोंके अनेक जन्मोंमें किये हुए अनन्त पापोंकी राशिका नाश करनेवाली एवं हृदय और कानोंको अतीव आनन्द देनेवाली है। यज्ञ, दान, तप, व्रत, तीर्थ आदि परिश्रम साध्य पुण्य-साधनोंके द्वारा भी वह लाभ नहीं प्राप्त होता जो कि सत्संगसे अनायास ही प्राप्त हो जाता है, क्योंकि प्रेमी सन्त महात्माओंके द्वारा कथित भगवत्कथाके श्रवणसे जीवोंके पाप समूल नष्ट हो जाते हैं और भगवद्भक्तिकी ओर सहज ही उनका झुकाव हो जाता है। सत्संगके प्रभावसे जीवों के अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल होकर उनमें भगवानके चरण कमलोंमें सहज ही श्रद्धा और प्रीति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार प्राणी दृढ़ताके साथ भगवन्नाम जप और प्रभुके स्वरूप का ध्यान करता हुआ तेजीसे बढ़कर शीघ्र ही भगवानको प्राप्तकर लेता है।

भगवानके साथ अपनेपनको लेकर उनमें दृढ़ विश्वास होना—यह भक्त हृदयका प्रधान चिन्ह है। भक्तोंका हृदय सम्पूर्ण जगत्में अव्यक्त रूपसे परिपूर्ण रहनेवाले परमात्माको आकर्षित करके साक्षात् मूर्तिमान रूपमें उन्हें प्रकट कर लेता है। जैसे—भक्त ध्रुव और प्रहलादके लिए भगवान् साक्षात् प्रकट हो गये थे।

भगवद्भक्ति अथवा भगवानमें अनन्य विशुद्ध प्रेमके लिए बहुत समय तक साधन करना ही आवश्यक नहीं है प्रत्युत उसके लिए तीव्र इच्छा होनी चाहिये। तीव्र इच्छाका लक्षण यह है कि वह भगवानके वियोगको सहन न सके, वह भगवानके विरहमें भरतजी की भाँति व्याकुल हो जाय। श्री तुलसीदासजीने भरतजी की दशाका वर्णन करते हुए कहा है—

"राम विरह सागर मँह भरत मगन मन होत।
विप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत।"

भगवत्-भक्तिमें प्रधान बात है—भगवान का होकर नित्य-निरन्तर श्रद्धा भक्तिपूर्वक निष्कामभावसे उन्हींका स्मरण चिन्तन करते रहना। स्मरणका अद्भुत प्रभाव है। भक्तोंकी कथाओंमें प्रायः यही बात मिलती है कि जहाँ भी जिस भक्तने भगवानको अपना समझकर

( शेष पृष्ठ २४ पर )

ज्ञान गीत

# सुख से विचर ?



'कूटस्थ हूँ, अद्वैत हूँ, मैं बोध हूँ, मैं नित्य हूँ।
अक्षय तथा निस्संग आत्मा, एक शाश्वत, सत्य हूँ ॥
नहिं देह हूँ, नहिं इन्द्रियाँ, हूँ स्वच्छ से भी स्वच्छतर।
ऐसी किया कर भावना, निर्भय सदा सुख से विचर !!

'मैं देह हूँ, फाँसी महा, इस पाश में जकड़ा गया।
चिरकाल तक फिरता रहा, जन्मा किया फिर मर गया ॥
'मैं बोध हूँ, ज्ञानास्त्र ले अज्ञान का दे काट सर।
स्वच्छन्द हो, निर्द्वन्द हो, आनन्दकर, सुख से विचर !!

निष्क्रिय सदा निस्संग तू, कर्ता नहीं भोक्ता नहीं।
निर्भय निरञ्जन है अचल, आता नहीं, जाता नहीं ॥
मत राग कर, मत द्वेष कर, चिन्ता रहित हो जा निडर।
आशा किसी को क्यों करे, संतृप्त हो सुख से विचर !!

यह विश्व तुझसे व्याप्त है, तू विश्व में भर पूर है।
तू वार है, तू पार है, तू पास है तू दूर है ॥
उत्तर तुही, दक्षिण तुही, तू है इधर, तू है उधर।
दे त्याग मन की छुद्रता, निःशंक हो सुख से विचर !!

'निरपेक्ष द्रष्टा सर्वका, इस दृश्य से तू अन्य है।
अक्षुब्ध है, चिन्मात्र है, सुख-सिन्धु-पूर्ण, अनन्य है ॥
छः ऊर्मियों से है रहित, मरता नहीं तू है अमर।
ऐसी किया कर भावना, निर्भय सदा सुख से विचर !!

आकार मिथ्या जान सब, आकार बिनु तू है अचल।
जीवन मरण है कल्पना, तू एक रस निर्मल अटल ॥
ज्यों जेवरी में सर्प त्यों अध्यस्त तुझमें चर अचर'।
ऐसी किया कर भावना, निश्चिन्त हो सुख से विचर !!

दर्पण धरें जब सामने, तब ग्राम उसमें भासता।
दर्पण हटा लेते जभी, तब ग्राम होता लापता॥
ज्यों ग्राम दर्पण माँहि, तुझमें विश्व त्यों आता नजर।
संसारको मत देख, निजको देख तू, सुख से विचर!!

आकाश घट के वाह्य है, आकाश घट भीतर बसा।
सब विश्व में है पूर्ण, तू ही वाह्य भीतर एकसा॥
श्रुति, सन्त, गुरु के वाक्य ये सच मान रे विश्वास कर।
भोला! निकल जग-जाल से, निर्बन्ध हो सुख से विचर!!

[ पृष्ठ २० कालम २ का शेष ]

यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाए, तो ये सभी शास्त्र पृथक नहीं हैं, अपितु एक ऐसे व्यापक शास्त्र के अनिवार्य अंग हैं, जिसे 'नाद-शास्त्र' की संज्ञा दी जा सकती है। वाल्मीकि हों या व्यास, भास हों या कालिदास, आनन्द-वर्द्धन हों या अभिनवगुप्त, इन सभी मनीषियों के वाङ्मयका सूक्ष्म अध्ययन हमें यह बताता है कि ये सभी नादशास्त्रके समस्त अंगों या शाखाओंपर गम्भीरतापूर्वक विचार करने वाले हुए हैं। ——

[ पृष्ठ २२ कालम २ का शेष ]

दृढ़ विश्वासपूर्वक प्रेमभावसे विह्वल होकर भगवानको स्मरण किया, वहीं भगवान प्रत्यक्ष प्रकट हो गये। भगवानने कहा भी है—

"अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥"

"हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्य चित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझे स्मरण करता है, उस नित्य निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिए मैं सुलभ हूँ अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।"

अतः एकमात्र भगवान्‌को इष्ट मानकर उनकी अनन्य भक्ति करना ही हम लोगोंका चरम लक्ष्य होना चाहिए। ——

[ पृष्ठ १८ कालम २ का शेष ]

बार उच्चारण करनेसे ही वायुमण्डलके परमाणु गरम होकर साकार क्रिया कर दिखाते हैं।

शास्त्रों, ऋषियों, मुनियोंने कहा है कि पूरे विश्वमें एक चैतन्य शक्ति जिसे आत्मा या ईश्वर कहते हैं, व्याप्त है। हमारा उच्चारण किया हुआ शुभाशुभ शब्द (मन ही मनका अथवा प्रकटका) उसी चैतन्य शक्तिको साकार कर दिखाता है।

शब्दोंमें रचना करनेकी बड़ी प्रबल शक्ति है, जो काम हम वर्षोंमें नहीं कर सकते, उसको शब्द शक्ति कुछ क्षणमें ही कर दिखाती है। उसी शब्द लहर द्वारा अभिलषित वस्तु आकर्षित होती है और कार्य सिद्ध होता है।

सारांश यह है कि जो शुभ कामना हम चाहते हैं, वह सब आकर्षण शक्तिके अधिकारके भीतर है और आकर्षण शक्तिका प्रत्येक वस्तुके परमाणुओंके साथ कंपन या लहरका सम्बन्ध है, जो शब्दों द्वारा आकर्षित और विकसित किये जा सकते हैं। अर्थात् सब वस्तुओंके प्राप्त करनेका मूल साधन शब्द है और इस प्रकार बड़ीसे बड़ी कामना भी जप (मंत्र) द्वारा पूर्ण हो सकती है। ——

धारावाहिक

# मानस सरस्वती

श्री वेदान्ती जी

## भारद्वाज का प्रश्न—

चौ०—एक बार भरि मकर नहाये।
सब मुनीश आश्रमन्ह सिधाये।
जागवलिक मुनि परम विवेकी।
भरद्वाज राखे पद टेकी।
सादर चरण सरोज पखारे।
अति पुनीत आसन बैठारे।
करि पूजा मुनि सुजसु बखानी
बोले अति पुनीत मृदुबानी।
नाथ एक संशय बड़ मोरे।
करगत वेद तत्व सब तोरे।
अस विचार प्रगटउँ निज मोहू।
हरहु नाथ करि जन पर छोहू।
रामनाम कर अमित प्रभावा।
सन्त पुरान उपनिषद गावा।
राम कवन प्रभु पूछेऊँ तोही।
कहिअ बुझाई कृपानिधि मोही।
एक राम अवधेश कुमारा।
तिन्ह कर चरित विदित संसारा।
नारि विरह दुख लहेउ अपारा
भयउ रोष रन रावन मारा।
दो०—प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ,
जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्य धाम सर्वग्य तुम्ह,
कहहु विवेक विचार॥

चौ०—जैसे मिटै मोर भ्रम भारी।
कहहु सो कथा नाथ विस्तारी।

भरद्वाजके प्रश्नका तात्पर्य यह है कि मेरी समझसे जगतको उत्पन्न, पालन तथा संहार करनेवाला व्यापक सच्चिदानन्द राम कोई और है और दशरथका पुत्र राम पञ्चक्लेशों से युक्त जीव कोटिका होनेसे उस सच्चिदानन्द ब्रह्म रामसे अन्य है। परन्तु बहुत लोग अवधेशकुमार रामको ही सच्चिदानन्द ब्रह्मका अवतार मानते हैं जो मेरी समझसे असम्भव है। कृपया इसका निर्णय कर दीजिये। हे गुरुदेव! मैं शिष्य भावसे प्रश्न करता हूँ, मेरे इस भारी भ्रमको दूर कीजिये क्योंकि जब तक रामके विषयमें जीवको मोह सन्देह भ्रम बना रहेगा तब तक जन्म मरणके चक्रसे कदापि नहीं छूट सकता।

## श्री याज्ञवल्क्यजी का उत्तर—

चौ०—जागबलिक बोले मुसुकाई।
तुमहि विदित रघुपति प्रभुताई।
राम भगत तुम्ह मन क्रम बानी।
चतुराई तुम्हारि मैं जानी।
चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा।
कीन्हिहु प्रश्न मनहुँ अति मूढ़ा।

तात सुनहु सादर मन लाई।
कहउँ राम कै कथा सुहाई।
राम कथा शशिकिरन समाना।
सन्त चकोर करहिं जेहि पाना।
ऐसेइ संशय कीन्ह भवानी।
महादेव तब कहा बखानी।

## भवानी का सन्देह—

दो०—ब्रह्म जो व्यापक विरज अज,
अलख अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर,
जाहि न जानत वेद॥

चौ०-बैठे सोह काम रिपु कैसे।
धरे शरीर शान्त रस जैसे।
पारवती भल अवसर जानी।
गई शम्भु पहिं मातु भवानी।
विश्वनाथ मम नाथ पुरारी।
त्रिभुवन महिमा विदित तुम्हारी।
जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी।
जानिय सत्य मोहि निज दासी।
तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना।
कहि रघुनाथ कथा विधि नाना।

## पारवतीजी के प्रश्न—

चौ०-प्रभु जे मुनि परमारथ वादी।
कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी।
तुम्ह पुनि राम राम दिन राती।
सादर जपहु अनंग आराती।
राम सो अवध नृपति सुत सोई।
की अज अगुन अलख गति कोई।

दो०—जो नृप तनय त ब्रह्म किमि,
नारि विरह मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत,
भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥

चौ०-जो अनीह व्यापक विभु कोऊ।
कहहु बुझाई नाथ मोहि सोऊ।
कहहु पुनीत राम गुण गाथा।
भुजग राज भूषन सुरनाथा।
जदपि जोषिता नहिं अधिकारी।
दासी मन क्रम वचन तुम्हारी।
गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं।
आरत अधिकारी जँह पावहिं।
अति आरति पूछउँ सुर राया।
रघुपति कथा कहहु करि दाया।
प्रथम सो कारन कहहु विचारी।
निर्गुन ब्रह्म सगुन वपुधारी।
पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा।
बाल चरित पुनि कहहु उदारा।
कहहु जथा जानकी विवाही।
राज तजा सो दूषन काही।
बन बसि कीन्हे चरित अपारा।
कहहु नाथ जिमि रावन मारा।
राज बैठि कीन्ही बहु लीला।
सकल कहहु शंकर सुखसीला।

दोहा-बहुरि कहहु करुना यतन,
कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजा सहित रघुवंश मणि,
किमि गवने निज धाम॥

चौ०-पुनि प्रभु कहहु सो तत्व बखानी।
जेहि विज्ञान मगन मुनि ज्ञानी।

भगति ज्ञान विज्ञान विरागा।
पुनि सब बरनहु सहित विभागा।
औरउ राम रहस्य अनेका।
कहहु नाथ अति विमल विवेका।
जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई।
सोउ दयालु राखहु जनि गोई।

श्री याज्ञवल्क्यजीने भरद्वाजजीसे कहा कि जो तुमने प्रश्न किया है इसको तथा अनेक प्रश्नोंको जगज्जननी भवानीने शंकर भगवानसे पूछा है।

अतः शंकर भगवानने भवानीजीके प्रश्न का उत्तर देते हुए उनको रामचरित मानस सुनाया है। उसको सुनो। रामचरित मानस आरम्भ करते समय भगवान शंकर स्वरूपसे अभिन्न सर्वाधिष्ठान सर्वात्मा सच्चिदानन्द राम की वन्दना करते हैं। फिर कथाकी महिमा सुनाते हैं।

चौ०—झूठहु सत्य जाहि विनु जाने।
जिमि भुजंग विनु रजु पहिचाने।
जेहिं जाने जग जाई हेराई।
जागे जथा सपन भ्रम जाई।
बंदउँ बाल रूप सोई रामू।
सब विधि सुलभ जपत तिसु नामू।
मंगल भवन अमंगल हारी।
द्रवउ सो दशरथ अजिर बिहारी।
करि प्रनाम रामहिं त्रिपुरारी।
हरषि सुधा सम गिरा उचारी।
धन्य धन्य गिरिराज कुमारी।
तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी।
पूछेहु रघुपति कथा प्रसंगा।
सकल लोक जन पावनि गंगा।
तुम्ह रघुवीर चरन अनुरागी।
कीन्हिहु प्रश्न जगत हित लागी।
जिन्ह हरि कथा सुनी नहि काना।
श्रवन रन्ध्र अहि भवन समाना।
नयनहिं सन्त दरस नहिं देखा।
लोचन मोर पंख कर लेखा।
ते सिर कटु तुम्बरि सम तूला।
जे न नमत हरि गुरु पद मूला।
जिन्ह हरि भगति हृदय नहिं जानी
जीवत शव समान ते प्रानी।
जो नहिं करहिं राम गुन गाना।
जीह सो दादुर जीह समाना।
कुलिश कठोर निठुर सोइ छाती।
सुनि हरि चरित न जो हरषाती।
गिरिजा सुनहु राम कै लीला।
सुर हित दनुज विमोहन शीला।
रामकथा सुन्दर करतारी।
संशय विहग उड़ावन हारी।
जथा अनन्त राम भगवाना।
तथा कथा कीरति गुनगाना।
तदपि जथाश्रुत जसिमति मोरी।
कहिहउँ देखि प्रीति अति तोरी।
एक बात नहिं मोहि सुहानी।
जदपि मोह वश कहेहु भवानी।
तुम जो कहा राम कोउ आना।
जेहि श्रुति गाव धरहि मुनि ध्याना।

दो०—कहहि सुनहि अस अधम नर,
ग्रसे जो मोह पिशाच।
पाषंडी हरिपद विमुख,

जानहिं झूठ न सांच ।
सो०—अस निज हृदय विचारि,
तजु संशय भजु रामपद ।
सुनु गिरिराज कुमारि,
भ्रम तम रविकर वचन मम ।

श्री पारवतीजीके सन्देहका तात्पर्य यह है कि जो निर्विकार अखंड अजन्मा नाम-रूपसे रहित निर्गुण, निराकार व्यापक ब्रह्म है, वह एक देहमें कैसे कैद हो सकता है । संसारमें परिच्छिन्न जीव कर्मवश देहको धारण करते हैं परन्तु निर्गुण निराकार व्यापक सच्चिदानन्द ब्रह्मका देह धारण करना नितान्त असम्भव प्रतीत होता है जैसे आकाश को मुट्ठीमें बन्द करना असम्भव है ।

दूध जैसे दही हो जाता है उसी प्रकार यदि निर्गुणका ही सगुण रूपमें परिणाम माना जाये तो फिर निर्गुणका अभाव हो जायेगा तथा विकारी होना पड़ेगा । श्री पारवती जीकी यह शंका सुनकर अपने इष्टकी वन्दनामें ही भगवान शंकरने समस्त शंकाओंका मूलोच्छेद कर दिया । वन्दनामें यह संकेत है कि सारे प्रश्न संसार है तभी सम्भव है । सुषुप्ति और तुरीयमें प्रश्नोंका होना असंभव है । संसारके आदि अन्तमें सजातीय विजातीय स्वगत भेदसे रहित केवल एक अद्वितीय सच्चिदानन्द ब्रह्म राम ही शेष रहता है । जैसे समस्त तरंगे उत्पन्न होनेके पहले जल थी और नाश होनेके अनन्तर भी जलरूपसे शेष रहती हैं उसी प्रकार सृष्टि उत्पन्न होनेके पहले केवल निर्गुण निराकार सच्चिदानन्द ब्रह्म रामके रूपमें ही थी तथा नाश होनेके अनन्तर सच्चिदानन्द ब्रह्म राम रूपसे शेष रहती है । अतः सच्चिदानन्द राम ही जगतके निमित्त और उपादान कारण उसी प्रकार हैं जैसे जालेका निमित्त और उपादान कारण मकड़ी है ।

जेहि सृष्टि उपाई त्रिविध बनाई,
संग सहाय न दूजा ।

अतः उपादान कारण भी होनेमें सच्चिदानन्द ब्रह्म अपने कार्य संसारमें उसी प्रकार व्यापक हैं "यथा —पट-तन्तु, घट-मृत्तिका, सर्प स्त्रगदारु करि कनक कटकाङ्गदादि (विनय-पत्रिका)।

व्यापक विश्व रूप भगवाना ।
तेहि धरि देह चरित कृत नाना ॥

जैसे स्वप्न साक्षी ही स्वप्नरूप भी होता है और उसमें व्यापक भी होता है और वही स्वप्नके अनेक मन्दिरोंमें कहीं शिवरूपमें, कहीं विष्णुरूपमें, कहीं अनेक देवताओंके रूपमें प्रतीत होता है और सर्वातीत भी रहता है । उसी प्रकार जाग्रत जगतका साक्षी सच्चिदानन्द ब्रह्म राम जगतमें व्यापक भी है और सर्वरूप होनेसे व्याप्य भी है और रज्जुसर्पवत् विवर्त रूपसे सर्वरूप होनेसे सर्वातीत भी है ।

अनवद्य अखंड न गोचर गो,
सब रुप सदा सब होय न गो ।
इति वेद वदन्ति न दन्त कथा,
रवि आतप भिन्न न भिन्न यथा ।
व्यापक व्याप्य अखंड अनंता ।
अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता ।

अतः जैसे स्वप्न द्रष्टा अपनी माया से अपने को स्वप्न रूप दिखला देता है तथा

रज्जु अपने को सर्परूप दिखला देती है उसी प्रकार सच्चिदानन्द राम अपने आप को माया से जगत् रूपमें दिखला रहा है। हे पारवती। जैसे रस्सी को जब तक नहीं पहिचानता तब तक सर्पका भाव रहता है और सर्प को सत्य मानकर भयकम्पादि भी होते हैं परन्तु रस्सीका प्रकाशमें साक्षात्कार होते ही यह निश्चय होता है कि सर्पका तीनों कालमें रज्जु देशमें अत्यन्ताभाव है, उसी प्रकार सच्चिदानन्द रामका साक्षात्कार होते ही यह निश्चय हो जाता है कि जगत न पहले था न अब है न आगे होगा। जैसे जागनेके पहले स्वप्न तीनों कालमें नहीं है ऐसा जानना असंभव है उसी प्रकार जब तक निर्गुण निराकार व्यापक सच्चिदानन्द ब्रह्म रामका अपरोक्ष ज्ञान नहीं होता तब तक जगत तीनों कालमें नहीं है केवल 'भास सत्य इव मोह सहाया, ऐसा निश्चय होना असम्भव है परन्तु जैसे जागते ही स्वप्नका अत्यन्ताभाव निश्चय हो जाता है उसी प्रकार सर्वाधिष्ठान परमात्मा सर्वात्मा सच्चिदानन्द ब्रह्म रामका अनुभव होते ही जगतका अत्यन्ताभाव निश्चय हो जाता है। हे पारवती!

दोहा—रजत सीप महुँ भास जिमि,
यथा भानु कर बारि।
यदपि मृषा तिहुँ काल सोई,
भ्रम न सकै कोउ टारि।

यहि विधि जग हरि आश्रित रहई।
यदपि असत्य देत दुःख अहही।
ज्यों सपने सिर काटै कोई।
बिनु जागे दुःख दूरि न होई।

जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई।
गिरिजा सोई कृपाल रघुराई।

हे उमा जैसे जाग्रतमें खड़े होकर स्वप्न सिद्ध नहीं हो सकता उसी प्रकार अवधेश कुमार भगवान् रामके परमार्थ स्वरूपमें स्थित होकर यह जाग्रत जगत भी सिद्ध नहीं हो सकता। पहले जगत को सिद्ध कर लो तब नाना प्रकारके प्रश्न करना भी उचित है। जागने पर स्वप्नके समस्त प्रश्न जिस प्रकार समाप्त हो जाते हैं उसी प्रकार परमात्मा सच्चिदानन्द ब्रह्म राम को पहिचानते ही कोई प्रश्न शेष नहीं रहेगा। जैसे स्वप्नमें अपने स्वप्न पतिसे यह प्रश्न करे कि इस जगतका जो ईश्वर इस जगतमें व्यापक है वह कैसे देह धारण कर सकता है। उसी प्रकार हे उमा! तुम्हारा भी प्रश्न है कि इस जगतमें जो व्यापक निराकार निर्विकार ईश्वर है वह कैसे देहधारण कर सकता है।

हे उमा। जैसे स्वप्नके ईश्वर साक्षी आत्मामें स्वप्नमें प्रगट होनेकी सामर्थ्य है उसी प्रकार जाग्रत् जगतके ईश्वर साक्षी स्वयं प्रकाश सर्वाधिष्ठान सर्वात्मा सच्चिदानन्द ब्रह्म राममें भी संसारमें अवतार लेनेकी सामर्थ्य है। सच्चिदानन्द ब्रह्म राम को केवल कौशल्या और देवकीकी गोदमें ही राम और कृष्णके रूप में अवतार लेनेकी सीमित सामर्थ्य नहीं है बल्कि स्वप्न व रज्जु-सर्पवत संसार रूप तथा जीव होनेका सामर्थ्य है।

हे उमा! ऐसा जानकर तुम अवतारमें सन्देह मत करो। भगवान्में अनेक अनेक रूप

होनेकी सामर्थ्य तुम सती शरीरमें देख भी चुकी हो। यथाः—

सती दीख कौतुक मग जाता।
आगे राम सहित श्री भ्राता॥
फिर चितवा पाछे प्रभु देखा।
सहित बन्धु सिय सुन्दर वेषा॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना।
सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना॥
देखे शिव विधि विष्णु अनेका।
अमित प्रभाव एक ते एका॥
वंदत चरन करत प्रभु सेवा।
विविध वेष देखें सब देवा।

दो०—सती विधात्री इंदरा, देखी अमित अनूप।
जेहि जेहि वेप अजादि सुर, तेहि तेहि तन अनुरूप॥

जीव चराचर जो संसारा।
देखे सकल अनेक प्रकारा।
अवलोके रघुपति बहुतेरे।
सीता सहित न वेष घनेरे।
सोइ रघुवर सोइ लछिमन सीता।
देखि सती अति भई सभीता।
हृदय कम्प मन सुधि कछु नाहीं।
नयन मूदि बैठी मगमाहीं।
बहुरि विलोकिउ नयन उघारी।
कछु न दीख तहँ दच्छ कुमारी।

हे उमा! जैसे सती शरीरमें तुमको भगवान रामने माया दिखलायी थी उसी प्रकार नारद को भी अपनी माया दिखलाकर उनके काम जीतनेके अभिमान को नाश किया।

—क्रमशः

# परम ज्ञान

गजाननसिंह चौहान 'नम्र' साहित्य-सदन, मंडलेश्वर (म० प्र०)

परम ज्ञान जब प्राप्त मनुज को हो जाता है।
उसे जगत का लगता सब झूठा नाता है॥

[ १ ]

पत्नि – पुत्र – पिता – माता का मोह न भाता।
सुख–वैभव–जायदाद, राज का ध्यान न आता॥
उसके लिये जगत मिथ्या हो दिखलाता है।
परम ज्ञान जब प्राप्त मनुज को हो जाता है॥

[ २ ]

हृदय लीन उस परम ब्रह्म के ध्यान में रहता।
अपने ही अन्तर में नित ईश्वर को लखता॥
उसका ज्ञान स्वयं वाणी ही बन जाता है।
परम ज्ञान जब प्राप्त मनुज को हो जाता है॥

[ ३ ]

ईश्वर को सत्ता में उसको सुख मिलता है।
उत्तम चर्या में ही नित्य समय जाता है॥
'नम्र' तुल्य वह स्वयं ईश के हो जाता है।
परम ज्ञान जब प्राप्त मनुज को हो जाता है॥

# हरिद्वार के अतीत पर एक दृष्टि

पं० सूर्यकान्त चतुर्वेदी

अनादि कालसे हरद्वार तपोवन रहा है, जहाँ ऋषि-मुनियोंने घोर साधना की है। यहीं से पतित पावनी, मुक्तिदायनी और अजस्त्र-वाहिनी गंगाको राजा भगीरथ मर्त्यलोकमें ले आये। हरद्वारको गंगा द्वार कहा जाता है। कुशावर्त, मायापुरी, हरद्वार, कनखल, ज्वालापुर और भीमगोंडा इन पाँच पुरियों को मिला कर ही हरद्वारका पूर्ण रूप प्रकट होता है। हरद्वारमें श्री मैत्रेयजीने विदुरजी को श्रीमद्-भागवतकी कथा सुनायी थी। नारदजीने भी सप्तऋषियोंसे श्रीमद्भागवत यहीं बैठकर सुनी थी। हरद्वारका माहात्म्य निम्न प्रकारसे वर्णित है :—

गंगाद्वारे कुशावर्ते विल्वके नील पर्वते।
स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते॥

अर्थात्—गंगाद्वार (हरकी पैड़ी) कुशावर्त, विल्वकेश्वर, नीलपर्वत तथा कनखल—इन पाँच प्रमुख तीर्थोंमें हमें स्नान करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता। ब्रह्मकुण्ड या हरकी पैड़ी के विषयमें धार्मिक ग्रन्थोंके अनुसार ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसी स्थान पर ब्रह्माजीने घोर तपस्या की थी। इसीसे इसका नाम ब्रह्मकुण्ड पड़ा। इसी प्रकार, राजा विक्रमादित्यके भाई भर्तृहरिने भी तपस्या करके अमर पद पाया था। भर्तृहरिकी स्मृति में राजा विक्रमादित्यने पहलेपहल यह कुण्ड तथा पेड़ियां यानी सीढ़ियाँ बनवाई थीं। इसी कारण यह 'हरकी पैड़ी' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। दूसरा स्थान कुशावर्त घाट है। कहते हैं कि यहीं पर दस हजार वर्षतक एक पैरसे खड़े होकर दत्तात्रेय जीने तपस्या की थी। ब्रह्माजीका ऐसा वरदान है कि यहाँ पितरोंको पिण्डदान देनेसे उनका पुनर्जन्म नहीं होता। इसके बाद तीसरा तीर्थस्थान है विल्व नामक पर्वत। ऐसा कहा जाता है कि यहीं पार्वती जीने महादेवजी को पतिके रुपमें पानेके लिये घोर तपस्या की थी। इसी पर्वतपर 'गौरी कुण्ड' भी है। यहीं बेलका पेड़ भी है। इसी लिये इसका नाम विल्वकेश्वर पड़ा। चौथा तीर्थस्थान है नीलपर्वत। इसके विषयमें ऐसा विश्वास किया जाता है कि यह स्थान नीलेश्वर महादेवजीको सर्वाधिक प्रिय था। नील पर्वतके नीचे गंगाजीकी धाराको नीलधारा कहते हैं। कहा जाता है कि नील नामक एक गणने यहाँपर अपने स्वामी शंकरजी को प्रसन्न करनेके लिये घोर तपस्या की थी। इसलिये इस पर्वतका नाम नील पर्वत और नीचेकी धाराका नाम नीलधारा पड़ा है। अन्तिम यानी पांचवाँ तीर्थ कनखल है। हमारे

( शेष पृष्ठ ३३ पर देखिये )

# कुम्भक्षेत्र हरिद्वारका वर्तमान वैभव

श्री देवकुमार शर्मा

हरिद्वारमें आजभी अनेक मन्दिर हैं। भवन भी पक्के और आधुनिक सुविधाओंसे युक्त हैं। अनेक स्थानों पर अतिथियोंके रहनेकी व्यवस्था है। इनमें गीता भवन अत्यन्त सुन्दर और रमणीक है। निवास स्थानके अतिरिक्त यहाँपर एक मन्दिर भी है। यह स्थान आज भी अति-पावन माना जाता है। हरद्वार, शिवालिक पर्वत श्रेणीमें स्थित है। इसके पार्श्वमें भगवती जाह्नवी प्रवाहित होती हैं। चतुर्दिक वनों एवं पर्वतोंसे घिरा हुआ यह नगर पुण्योज्ज्वल होनेके साथ अतिरमणीक भी है। नगरके पश्चिममें विल्व पर्वत और पूर्वकी ओर नीलधारा तथा नील पर्वतकी नीली श्रृङ्खलाएँ खड़ी हैं। अतएव केवल दो दिशाओं अर्थात् उत्तर और पश्चिममें ही यह फैला है। उत्तरकी ओर भीम गोड़ा व खड़खड़ीकी बस्तियाँ हैं। और यहींसे ऋषिकेशके लिए सड़क जाती है। दक्षिणमें मायापुर, कनखल और ज्वालापुरकी बस्तियाँ हैं।

यहाँ पर्वत शिखरोंकी नैसर्गिक छटा देखते ही बनती है। प्रकृति नित नूतन अपने सौन्दर्य को सँवारा करती है। पर्यटक व दर्शनार्थी इसकी छटाको देखकर मुग्ध हो जाते हैं। यही कारण है कि हमारे प्रमुख तीर्थ स्थान उत्तराखंडके इन्हीं वन उपवनोंमें अधिक हैं। यहाँके जन-जीवनमें एक नयी चेतना संचारित होती है। स्वास्थ्य लाभके अलावा, विशुद्ध धार्मिक भावना भी उमड़ पड़ती है।

हरद्वारको गंगाद्वार कहनेका कारण यह है कि मैदानोंमें गंगाके सर्व प्रथम यहींपर दर्शन होते हैं। अधिक आकर्षण केन्द्र हरकी पैड़ी है। सायंकाल नित्य ही वहाँ धार्मिक जनताका मेला सा लगा रहता है। बहुत श्रद्धाके साथ गंगाजीकी आरतियाँ उतारी जाती हैं। साथ ही असंख्य दीपशिखायें पंक्तियोंमें गंगामें प्रवाहित की जाती हैं। हरकी पैड़ीके अतिरिक्त अन्य अनेक मन्दिर और सार्वजनिक संस्थायें भी हैं। मन्दिरोंमें प्रमुख हैं:—गंगाजीका मन्दिर सर्व-नाथ, मायादेवी, भीमगोंडा, चण्डीदेवी, मनसा-देवी, विल्वकेश्वर आदि। सूर्यकुण्ड, भोलागिरी मन्दिर, श्रवणनाथ मन्दिर, अन्जनीदेवी, सप्त-सरोवर, सत्यनारायण मन्दिर, भरत मन्दिर, स्वर्गाश्रम, लक्ष्मण मन्दिर, मृत्युञ्जय महादेव एवं पातालेश्वर महादेव आदि स्थान भी दर्शनीय हैं। हाल हीमें गोस्वामी गणेशदत्त जीने गंगा जीके तट पर सप्तर्षि-आश्रम नामक एक संस्थाका निर्माण कराया है। जिनमें सप्तर्षियोंके नामका सप्तर्षि मन्दिर और उनके नामपर पृथक्-पृथक् कुटियाँ हैं। निर्जन बनस्थली पर निर्मित यह आश्रम और उसके आस पासकी प्राकृतिक शोभा आध्यात्मिक प्रेरणा प्रदान करती है।

स्वतन्त्रता प्राप्तिके बाद भारतकी राष्ट्रीय सरकारने प्रथम और द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओंके अन्तर्गत हरद्वारका काफी विकास किया है। हरद्वार—ऋषिकेशकी सड़कपर ऋषिकेशसे लगभग तीन मील पूर्व-पशुसदनकी स्थापनाकी गई है। इसके साथ ही पहाड़ी क्षेत्रोंमें फल उपयोग विकासके लिए भी एक विशाल केन्द्र खोला गया है। बाढ़से कनखल कस्बेको बचाने के लिए हरद्वारमें गंगा नदी पर एक पुलका निर्माण किया गया है। गंगा नहर शाखामें लगभग तीन हजार पाँच सौ फीट पक्के घाट भी बनाये गये है। प्रति छठें एवं बारहवें वर्ष अर्द्ध तथा पूर्ण कुम्भ पर्व पड़ते रहनेके कारण यहाँ विकास कार्य तेजीसे होता रहता है। सड़कोंका विस्तार काफी हुआ है। पुरानी सड़कोंकी मरम्मत हुई हैं। नये पुल बने हैं। हरकी पैड़ीके कुछ आगे सेवा कार्य करने वालोंके कैम्प लगानेकी व्यवस्थाकी गई है। इस स्थान पर इस वर्ष बड़े पैमाने पर कुम्भ मेला सम्पन्न हुआ है। लगभग २५ लाख जनताकी भीड़ होनेका अनुमान है, ऐसी दशामें सरकार का उत्तरदायित्व स्वभावतः बढ़ गया है। उसने मेलेके प्रबन्धके लिए दो करोड़ रुपयेसे अधिक की रकम स्वीकारकी है। यात्रियोंकी सुविधाके लिए खूब इन्तजाम किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक संगठन भी ऐसे अवसरों पर सक्रिय हैं।

———

( पृष्ठ ३१ कालम २ का शेष )

धर्मशास्त्रोंके अनुसार इसमें स्नान करनेका बहुत बड़ा पुण्य प्राप्त होता है। नीलधारा तथा नहर वाली गंगाधारा दोनों यहाँ आकर मिल जाती हैं। सभी तीर्थोंमें भटकनेके बाद यहाँपर स्नान करनेसे एक खलकी मुक्ति हो गई थी। इसलिये मुनियोंने इसका नामकरण कनखल कर दिया।

इसके अतिरिक्त, यहाँ सतीकुण्ड तथा दक्षेश्वर महादेव जी हैं। इसका महत्व कुम्भ के कारण बहुत ही बढ़ गया है——

हरद्वारका पुराना नाम मायापुरी था जिसकी गिनती मोक्षदायिनी सप्तपुरियोंमें की गई है।

अयोध्या, मथुरा माया, काशीकांची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैतः मोक्षदायिकाः॥

स्कन्द पुराणमें मायाक्षेत्रकी जिसमें वर्तमान कनखल, ज्वालापुर, प्राचीन कालमें इसे भोगपुर कहा जाता था, हरद्वार, ऋषीकेश, लक्ष्मणझूला आदि स्थित हैं, उत्पत्तिका वर्णन है। कनखलमें प्रहलादने वीरभद्र और भद्रकालीकी उपासना की थी। राम-लक्ष्मणका भी इस क्षेत्रसे सम्बन्ध बताया जाता है। रावणको मारनेके पश्चात ब्रह्महत्यासे मुक्त होनेके लिये यहींसे होते हुये तप करनेके लिये राम देव प्रयाग गये, और लक्ष्मणजीने लक्ष्मण झूला पर तपस्या की थी। सम्भवतः उसी समयसे लक्ष्मणझूला उस क्षेत्रका नाम पड़ गया जहाँ उन्होंने तप किया था। झूलेके पास वह विशाल मन्दिर हैं जो लक्ष्मण मन्दिरके नामसे आज भी विख्यात है। पांडव भी स्वर्गारोहणके हेतु इसी स्थानसे होकर गये थे। भीमके नामसे सम्बन्धित यहां भीम गोंडा नामक स्थान है।

—:०:—

# सूक्तियाँ

विवेक—सब प्राणी आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं, मगर विवेक बिना आनन्द नहीं मिलता।

दुख—विषयसेवन स्वयं दुःखरूप है, इसलिये संसारका दुख विषय सेवनसे दूर नहीं हो सकता। जैसे खूनका दाग खूनसे नहीं धोया जा सकता। संसारमल को धोनेके लिये वैराग्य जल जरूरी है।

सुख—जो सुख भयपूर्ण और क्षणिक है वह दुःख ही है।

यह परम प्यारी लगने वाली निकटवर्ती काया भी रोगी और बूढ़ी होने पर आत्मा को दुःख देती है, तो फिर धनादि दूर की चीजोंसे सुख कैसे मिल सकता है ?

मनुष्य—मोक्ष सिर्फ मानव देहसे मिल सकता है। यह नरतन बहुत दुर्लभ है; चिन्तामणि रत्नसे भी ज्यादा कीमती है; यह अगर देहार्थमें ही गुजर गया तो कानी कौड़ीकी भी कीमतका न रहा।

सत्संग—सत्संग सरीखा कल्याणका कोई बलवान कारण नहीं है।

ज्ञान—जिसने आत्मज्ञान प्राप्त करने का पक्का इरादा कर लिया है, वह पहले यह माने कि 'मैं कुछ नहीं जानता' और फिर ज्ञानीकी शरण ले।

अँधेरे को कितना ही उलटिये-पलटिये उजाला नहीं हो सकता। तिमिरावृत प्राणी की कल्पना आत्मज्ञानस्वरूप नहीं हो सकती। जो आत्माको सत्संगका रस चढ़ावे, जिससे आत्मसिद्धि हो, सो सत्संग है। उत्तम शास्त्रका अध्ययन भी सत्संग है !

सत्पुरुष—सत्पुरुषके मिल जाने पर आत्मज्ञान कुछ मुश्किल नहीं है।

परमात्मा—परमात्माको ध्यानेसे आत्मा परमात्मा हो जाता है।

धर्म—तू चाहे जिस धर्मको मानता हो, इसका मुझे पक्षपात नहीं, कहना यही है कि जिससे संसारमल नष्ट हो उस धर्मका सेवन कर।

मोक्ष—मोक्षके रास्ते दो नहीं हैं।

आजीविका—मुमुक्षुके लिये बहुत है; क्योंकि ज्यादाकी कोई जरूरत नहीं है।

आजीविका—प्राप्त होगी ही, इसलिये मात्र निमित्तरूप प्रयत्न करना चाहिये, पर भयाकुल होकर चिन्ता या न्याय-त्याग नहीं करना चाहिये।

विवेक—विवेक अँधेरेमें पड़ी हुई आत्मा को पहचानने का दीया है। विवेकसे धर्म टिकता है। जहाँ विवेक नहीं है वहाँ धर्म नहीं है।

जो विवेकी नहीं है वह अज्ञानी है, मूढ़ है।

पूजा—सबसे अच्छी पूजा चित्तकी प्रसन्नता है। इसीमें सब साधन समाये हुए हैं।

जीभको वश कर लेने पर बाकी की चार इन्द्रिया आसानोसे वशमें आ जाती हैं।

भक्ति—भक्ति सर्वोपरि है, सद्गुरु पास हों तो क्षण भरमें मोक्ष दिला दें।

आत्मा और परमात्माका एकरुप हो जाना पराभक्तिकी पराकाष्ठा है।

भक्तिकी पूर्णता तब होती है जब भगवानसे एक तिनका भी न मांगे।

राग—जिसे दुनियाँकी चीजोंसे तीव्र स्नेह है वह मोक्षमार्गी नहीं है।

विद्या—जिस विद्यासे विवेक न आया वह फिजूल है।

पुस्तक—माया-दुनियाका प्रदिपादन करने वाली किताबोंकी अपेक्षा आत्मज्ञान कराने वाली किताबें पढना चाहिये।

मत—मत-मतान्तरोंका त्याग कर देना चाहिये। मत-मतान्तरोंकी वृद्धि करने वाला वांचन नहीं करना।

विचार—विचारवानको अज्ञानकी निवृत्ति के सिवाय और कोई इच्छा नहीं होती!

'इन्सान आत्मविचार क्यों नहीं कर सकता?' 'राग द्वेष के कारण'।

संसार—संसारमें परिभ्रमण कराने वाली क्रोध, मान, माया, लोभकी चांडाल चौकड़ी है।

वक्ता—जब तक असत्य और परस्त्रीका त्याग नहीं किया तब तक कोई वक्ता या श्रोता नहीं बन सकता।

आत्मज्ञान—जैसे दर्पणसे अपने मुखका भान होता है, उसी तरह परमात्माके गुण-चिन्तनसे आत्मस्वरुप का भान होता है।

## सत्संग से लाभ?

मति कीरति गति भूति भलाई।
जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई।
सो जानहु सत्संग प्रभाऊ।
लोकहु वेद न आनि उपाऊ॥

ऐसा कोई लाभ नहीं है जो सत्संगसे न प्राप्त हो सकता हो। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारोंकी प्राप्ति सत्संगसे ही होती है। जो अर्थ और काम यदि किसी को सत्संगके बिना ही प्राप्त हो वह निश्चय ही धर्म और मोक्षका विरोधी है। वह लाभ रूप न होकर हानिरूप ही होता है।

# सन्तोंकी प्रियभूमि ऋषिकेश

लेखक—श्री अनन्त गोपालजी

⊙

हरिद्वारसे १४ मील दूर, अनुपम सौंदर्य-शाली ऋषिकेश बसा हुआ है। यहाँ गंगाजी हिमालयकी कन्दराओंसे विदा लेती हैं। ऋषि, केशसे हरिद्वार तक उनका प्रवाह समतल जंगलोंमें से है।

केवल गंगाके दर्शन मात्रसे भावुक भारतीयका हृदय आनन्द-विभोर हो जाता है। यदि उसके साथ गौरीगुरु हिमालयके अद्भुत सौंदर्य का सान्निध्य भी हो तो फिर पूछना ही क्या है? ऋषिकेशमें यह सान्निध्य प्राप्त होता है। बदरीनारायण को पैदल जानेका मार्ग भी यहीं-से शुरू होता है और गंगाके किनारे-किनारे ही जाता है। बायीं ओर गंगा दीखती हैं और दाहिनी ओर हिमालयकी उत्तुंग पर्वत-श्रेणियाँ। प्राकृतिक सौंदर्य वहां कदम-कदम पर बिखरा पड़ा है। उसके कारण यात्री अपने प्रवासकी सारी थकावट और जीवनकी चिन्ताएँ भूलकर एक विचित्र प्रेरणा और उल्लासका अनुभव करने लगता है।

आजकल इस पैदल मार्गसे बदरीनारायण वे ही जाते हैं जिनके पास मोटरकी यात्राके पैसे नहीं होते। उनमें अधिकांश साधु-संन्यासी और दरिद्रनारायण ही हुआ करते हैं। वे इस दीर्घ और दुस्तर मार्गकी कठिनाइयों को ईश्वर पर पूर्ण श्रद्धा रखकर ही झेलते हैं। मानव को इतना कष्ट सहनेकी इतनी शक्ति जो देती है उस श्रद्धाकी महिमा भी कितनी अद्भुत है!

ऋषिकेशमें अधिकांश साधुओंकी बस्ती है। वहां साधुओंके आश्रम और अखाड़े हैं। बाबा काली कमली वाले की, जिनकी ओरसे जगह-जगह चट्टियों पर विश्राम-स्थान बने हुए हैं, वहां धर्मशाला है और प्रधान कार्यालय भी। ऋषिकेश से तीन मील दूर लक्ष्मण झूला है, उसके मार्ग पर 'मुनीकी रेती' है जहाँ साधुओंके आश्रम हैं।

स्वामी शिवानन्दजी की "आनन्द कुटी" भी यहीं स्थित है। मैं आनंद-कुटीमें तीन दिन ठहरा। वहां मुझे दो फ्रेंच युवक और एक फ्रेंच युवती मिली जो वहाँ विश्राम करने आये थे। वे भारतकी आध्यात्मिक शक्तिकी उपासना और अवलोकन करने के लिये इस देशमें भ्रमण कर रहे थे। बदरीनारायणसे वे पैदल यात्रा करके लौटे थे। नगे पैरों ही चला करते और जमीन पर एक दरी बिछाकर ही सो जाया करते। भोग-विलास में लिप्त योरूप की सभ्यता और हाय-हायसे दूर हो शांति पानेके लिये वे भारत आये थे। उनकी सादगी, आत्म-संतोष और फक्कड़पन देखकर उनके प्रति मुझे बड़ी श्रद्धा हुई।

लक्ष्मण-झूले के पास ही लक्ष्मण जीका मन्दिर है। यह स्थान सचमुच बड़ा रमणीय है। पहले यह झूला या पुल रस्सों का बना

था और उसे पार करना खतरेसे खाली नहीं था। सन्तुलन गया कि फिर सीधे गंगाजीमें ही समाधि मिलती। पर अब इसकी जगह लोहेका पक्का पुल है जो सब तरह सुरक्षित है। इसी को पार करके बदरीनारायणका पैदल मार्ग जाता है।

प्रायः, लक्ष्मण जीका स्वतंत्र मंदिर कहीं नहीं देखा जाता। वे हमेशा रामचन्द्र जीके या राम और सीताके साथ ही रहा करते हैं। पर यहां उनका स्वतन्त्र मन्दिर है। कहा जाता है कि रावण और कुंभकर्णके हननके कारण उन्हें ब्रह्म-हत्याका जो पातक लगा था उसीका प्रायश्चित करनेके लिये उन्होंने इस स्थान पर ११२ वर्षतक तपस्या की थी। तपस्याके लिये उन्होंने यथार्थमें बहुत सुन्दर स्थान चुना इसमें सन्देह नहीं।

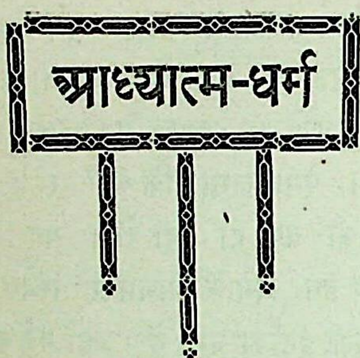
ऋषिकेषमें गंगाके उस पार स्वर्गाश्रम और गीता-मन्दिर है। ग्रीष्मकी छुट्टियोंमें तो मैंने यहाँ एक बड़ा मेला-सा देखा। देशके सभी प्रान्तोंसे, पर अधिकांशमें उत्तर प्रदेश, राजस्थान और मध्यभारत तथा बम्बई-कलकत्ता से वहाँ लोग आते हैं और महीने दो महीने रह कर भगवद्-भजन हरिकीर्तन,, सत्संग, आदि किया करते हैं। गीता-मन्दिरमें गीताके श्लोक और तुलसी रामायणकी चौपाइयाँ दीवारोंपर लिखी है। साधु-सन्तोंके तथा महाभारत-भागवत के प्रसंगोंके बहुरंगे सुन्दर चित्र भी वहाँ अङ्कित किये गए हैं। गीता-मन्दिरके घाटसे शिवानन्द जी की कुटी तक गंगा पार जाने के लिये एक मोटर-नाव चला करती है जिसमें यात्री निःशुल्क आया-जाया करते हैं।

स्वर्गाश्रम में योगाभ्यासी, मुमुक्षु लोग रहते हैं जिनका प्रायः सारा समय ध्यान, चिन्तन, मनन और भजनमें ही बीतता है।

सेवाश्रमको भी देखकर मैं आश्चर्य-चकित हो गया। ऐसा लगा कि वहाँ स्नेह और आत्मीयताकी वर्षा हो रही हो। यह स्थान गंगा और हेम गंगाके संगमपर स्थित है। आश्रम पक्की ईंटोंका बना है। वहाँ पहुँचते ही उसके अवर्णनीय सौन्दर्यको देखकर मैं दंग रह गया। आनन्द और परितृप्तिकी समाधि क्या होती है उसकी स्वल्प-सी झाँकी मुझे वहीं दिखाई दी। वहाँसे कोई भी आदमी भूखा नहीं लौटता। सेवाश्रमसे पहले गरुड़-चट्टी लगती है, जहाँ गरुड़-गंगाका जल-प्रपात हैं। सेवाश्रमके पास ही सहस्त्रधारा है जहाँके पानीमें ऐसे कुछ क्षार हैं कि उसके सतत् सम्पर्कसे लकड़ी भी पत्थर हो जाती है।

ऋषिकेशके प्राकृतिक सौन्दर्यमें अद्भुत आकर्षण-शक्ति है। उसे देखकर मनुष्यके मन में संसारसे विरक्ति हो जाय और शेष जीवन वहीं बितानेकी इच्छा हो जाय तो आश्चर्य नहीं। प्रकृति और परमेश्वरके संयोगके पवित्र दर्शन भी हमें वहीं होते हैं। परन्तु यह हमारी मनोवृत्ति और दृष्टिपर भी अवलम्बित है। मेरे एक परिचित मित्र जो दमेके मरीज थे और सौ कदम भी नहीं चल पाते थे, ऋषिकेष के उल्लासपूर्ण प्रभावसे बद्री-केदारकी दो सौ मीलकी यात्रा निर्विघ्न पूरी कर आये। यह है, ऋषि मुनियोंकी पुण्यभूमिकी महिमा।

---




पं० द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री

मानव-जीवनका चरम उद्देश्य सभी शास्त्रकारोंने मोक्ष प्राप्तिको बताया है, जिसको परम पुरुषार्थभी कहा गया है। तथापि उसके साधनभूत धर्म, अर्थ, कामभी मानव जीवनके लिये अत्यन्त महत्व रखते हैं, क्योंकि साध्य तक पहुँचाने वाले साधन ही तो होते हैं। इस लिए यदि धर्म, अर्थ, काम जब तक यथार्थ-तया सिद्ध नहीं होते तब तक मोक्ष प्राप्ति न केवल कठिन या दुःसाध्य ही होती है, अपितु असम्भव होती है। अतः मनुष्य मात्रको, जो अपने जीवनको सफल बनाना चाहते हैं, उनको भौतिक जड़वादसे अलग रहकर अध्यात्मवाद की तरफ ही प्रवृत्त होना चाहिए।

अध्यात्मवादका प्रथम सोपान धर्म ही है। यद्यपि धर्मवादमें अभ्युदय एवं निःश्रेयस अर्थात् ऐहिक (सांसारिक) उन्नति तथा पारलौकिक दोनों हो मिश्रित है। इन दोनोंको पृथक नहीं किया जा सकता है, क्योंकि एक साध्य है और दूसरा उसका साधन है, जैसा कि शास्त्रकारोंने भी मुक्त कंठसे प्रतिपादित किया है—

यतो अभ्युदयनिःश्रेयसिद्धिः स धर्मः।

अर्थात् जिससे कि ऐहलौकिक एवं पार-लौकिक दोनोंकी ही पूर्णतया निष्पत्ति हो उसी का नाम धर्म है। तथापि यह तो स्वीकार करना ही पड़ता है कि ऐहिक उन्नति साध्यके साधनभूत होनेसे गौण है। मुख्य तो पारलौ-किक उन्नति या मोक्षप्राप्ति को ही कहा जा सकता है। इसी तत्त्वोंकी ओर वेद भी स्पष्ट शब्दोंमें संकेत करते हैं—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥ (वेद)

इससे ध्वनित होता है कि हिरण्यमय जो भौतिकवाद है, उसको भी उन्नति होना आव-श्यक है। उससे पृथक होकर जो सत्यधर्म अर्थात् अध्यात्मवाद है, वही मुख्य है।

साधारणतया हम देखते हैं कि बुद्धिमान व्यक्ति भी भौतिकवादकी चकाचौंधसे चकरा जाता है। अधिकतर मनुष्य वहिर्मुखी प्रवृत्ति वाले ही होते हैं, अन्तर्मुखी प्रवृत्ति तो बहुत कम महापुरुषोंमें ही दृष्टिगोचर होती है। यह सिद्ध है कि जब तक संसार इस अन्तर्मुखी प्रवृत्तिसे विमुख रहेगा और जड़वादके जंजाल में फँसा रहेगा, तब तक सुख और शान्ति मृगतृष्णा जलके समान ही नितान्त असम्भव रहेगी। उपनिषद् बचनोंमें भी उक्त तत्त्व का विवेचन बड़े रोचक ढंगसे किया गया है।

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
स्वयं धीरा पण्डितम्मन्यमानाः।
जंघन्यमाना परियन्ति मूढ
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥

अर्थात् मनुष्य प्रायः अविद्या लोकमें ही अपने आपको सुखी समझते हुए, धीर एवं विद्वान समझते हुए एक दूसरेको स्वार्थवश हनन करते हुए मूढ़ अन्धोंके पीछे चलते हुए अन्धोंके समान नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार जड़वादमें रत हुआ जनसमुदाय विनाशका ग्रास बनता है। यह एक ध्रुव सत्य है। संस्कृत साहित्यमें तो इस तत्त्वका पदे-पदे विवरण मिलता है। यद्यपि उपनिषत्कारोंने विद्या दो प्रकार की बतलायी है—परा और अपरा। अपरासे तात्पर्य ऋग्वेदादि सत् शास्त्रोंका ग्रहण एवं परासे मोक्षशास्त्रका अर्थात् उपनिषदोंमें वर्णित अध्यात्मवादसे उसका सम्बन्ध बताया गया है। कुछ अंश तक यह है भी ठीक। परन्तु वास्तविक दृष्टिसे पर्यालोचन करनेसे सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मयका उद्देश्य ही अध्यात्मवाद है. विशेषकर वेदों तकका भी मुख्य प्रतिपाद्य विषय अध्यात्मवाद ही है। यास्काचार्य लिखते हैं कि तीन प्रकारकी ऋचायें होती हैं अर्थात् आध्यात्मिक आधिदैविक, आधिभौतिक। परन्तु अध्यात्मपरक तो सभी ऋचायें है। जितने वैदिक देवता हैं वह सब मौलिक रूपसे परमात्मामें ही घटित होते हैं। वेदके किसीभी मंत्र को ले लीजिये और उसका किसीभी प्रकारका अर्थ कीजिये उसमें अध्यात्मतत्व सम्पूर्णतया निहित दीख पड़ेगा।

शम, दम आदि अनुष्ठान करने पर एवं यम, नियम आदि सम्पर्क सिद्धिके द्वारा मनुष्य अपने अन्तरात्मामें जब अन्तर्ज्योतिको प्रदीप्त करता है, तभी उसके अन्दर अन्तर्निहित प्रचेतनाका अनावरण होता है। तब निसर्गतः अन्तर्निहित उस दिव्य ज्योतिका भान होने लगता है, तभी वह अध्यात्म ज्योति कहाती है, इसीका नाम अध्यात्मवाद है। इस स्थितिको जो प्राप्त कर लेता है उसको एक अद्भुत आनन्दका अनुभव होता है, जिसका कि वाणी वर्णन नहीं कर सकती।

न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा
स्वयं तदन्तः करणेन गृह्यते ॥

अर्थात् वह आनन्द वाणीका विषय नहीं है, अपितु अनुभूति का विषय है।

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।

अर्थात् उसी दशामें आत्माकी स्वरूपमें अवस्थिति और उसी स्थितिमें आत्माके द्वारा परमात्मा अवभासित होता हैं।

सा काष्ठा सा परागतिः।

वही काष्ठा है अर्थात् चरमस्थिति है। वही परागति है। इस स्थितिको प्राप्त करके ही मुमुक्षु मनुष्य मोक्षको प्राप्त कर लेता है। जो इस मनुष्य जीवनका चरम प्रयोजन है।

"मरुद्भिः अग्ने आगहि" इस नव ऋचा वाले सूक्तका सायण आदि भाष्यकारोंने वर्ष कामेष्टिमें विनियोग किया है परन्तु इसका मुख्य तात्पर्य आध्यात्म ही है। अन्य भी अर्थ इसके हो सकते हैं किन्तु प्रधान बिषय अध्यात्म ही है। ये केवल हम उदाहरणके लिए प्रस्तुत करते हैं। इस सूक्तकी अन्तिम ऋचा ही पर्याप्त है। वह ऋचा निम्न प्रकार हैं:—

अभि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥

हे अग्ने परमात्मन! तेरे प्रति मैं अपना कल्याण करने वाले मधुकी रक्षाके लिए सम्पादित करता हूँ। आप अपनी सर्व सामर्थ्यसे आइये और मुझे कृतकृत्य कीजिए। अर्थात्

अपने सब साधनोंसे सम्पन्न होकर आपके शरण आता हूँ। आप मुझे आनन्द मधुका पान कराइये। इस प्रकार सारे सूत्रका अर्थ अध्यात्म परक लगता है।

इसी प्रकार वस्तुतः किसी भी देवताको लेकर तत्तद्विषयक अर्थ हो सकते हैं, परन्तु मुख्य तात्पर्य अध्यात्म परक ही है। इसलिए यह स्पष्ट ध्वनित होता है कि जितने ज्ञान, विज्ञान, शिल्प-कला आदि शास्त्र है वे सब अध्यात्मवादके स्वार्थ ही हैं। राजनीति यदि अध्यात्मवादसे विहीन हैं तो वह भयंकर मानव विनाशकारी शक्ति बन जाती है और जहाँ वह अध्यात्मवादके रक्षार्थ काममें लायी जाती है, वहीं वह अपने यथार्थ प्रयोजनको सफल करती है। व्यक्तिरूपसे अथवा समष्टिरूपसे वास्तविक उन्नतिका हेतु अध्यात्मविद्या ही हैं। इसलिए प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि वह अपनी अध्यात्मवादरूपी दिव्य अग्निको प्रज्वलित रक्खे।

भारतके प्राचीन इतिहासके पर्यालोचनसे स्पष्ट हो जाता है कि शासनचक्र पर भी अध्यात्मवादका प्रभाव रहता था। यदि किसी बातमें गड़बड़ होती थी, एवं कोई जटिल समस्या उत्पन्न होती थी तो तब ऋषि-मुनियों को ही सम्मतिसे कार्य किया जाता था और उनकी सर्व कल्याणकारी निष्पक्ष एवं निःस्वार्थ सम्मति ही राष्ट्रोंको बड़ी-बड़ी समस्याओंसे बचा लेती थी। इसी प्रकार व्यक्तिगत भी आत्मा अध्यात्म प्रकाशसे अपने जीवनके कण्टकाकीर्ण मार्गको प्रकाशित कर सरल बना लेता था। और दुनियामें अजातशत्रु होकर पक्ष-विपक्ष दोनोंके लिए उस ज्योतिको प्रज्वलित करता था कि जिससे अपने समान अन्य सभी को प्रकाश मिलता था और सभी कल्याण-पथ के पथिक बन जाते थे। उसके हृदयमें एक अखण्ड शुभ कामना प्राणीमात्रके लिए आविष्कृत हो जाती है। और एक दिव्य ध्वनिसे सम्पूर्ण गगन मण्डल प्रतिध्वनित हो उठता है।

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्वः सर्वमवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु॥

अर्थात् सब मनुष्य दुस्तर दुःखोंको तर जायें और सब कोई कल्याणको देखे एवं अनुभव करें। और सब कोई सम्पूर्ण इष्ट कामनाओंको प्राप्त करें। तथा सब ही सब प्रकार आनन्दोंका उपभोग करें। कितने सुन्दर भाव हैं। अध्यात्मवादके द्वारा ही एक नवीन अद्भुत और प्रकाशमय लोकका निर्माण हो सकता है। इसीलिये शास्त्रकारोंने कहा है कि—हे मनुष्य! यदि तू जीवनको दुर्गम घाटियों को पार करना चाहता है और अपनी मनोवांछित कामनाओंको पूर्ण कर अपनेको पूर्णताकी कोटि पर पहुँचाना चाहता है और उस चरमपद मोक्ष परमानन्दका रसास्वादन करना चाहता है तो अध्यात्मवादको शरण ले। उसको पूर्णतया समझ और सम्यक्तया क्रियान्वित कर, उसकी तन्मयताको प्राप्त कर और परमानन्दका रस ले। जैसा कि वेद कहता है :—

"त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्॥
यजु० ३।६०

हम उस अनन्त शक्ति वाले पुष्टिवर्धक परमेश्वरकी उपासना करते हैं। जो हमें मृत्युके बन्धनसे मुक्त करता है और अमृततत्वको प्राप्त कराता है जिस प्रकार खरबूजा पकनेपर अपनी बेलके बन्धनसे छूट जाता है।

—वेदवाणी से साभार

# शंका समाधान

प्रश्न—बद्ध अल्पज्ञ जीवकी नित्यमुक्त सर्वज्ञ ईश्वर से एकता कैसे होगी ?

उत्तर—यही प्रश्न एक महात्मासे एक मुमुक्षु ने किया। महात्माने उसको गंगाजल लानेके लिये अपना कमंडल दिया और कहा कि इसमैं गंगाजल भर लाओ, तब उत्तर दूंगा। मुमुक्षु कमंडलुमें गंगाजल भर लाया। महात्माने मुमुक्षुसे कहा कि इस कमंडलु जल को गंगाजल कैसे मान लूँ। गंगाजलमें नावें चलती हैं और उसमैं हाथी डूब जाते हैं और गन्दी नालियोंके मिलनेसे भी वह ज्यों का त्यों पवित्र रहता है। परन्तु इस कमंडलु जलमें एकभी नाव नहीं चलती है और इसमें पैरभी नहीं डूब सकता और इसमें थूक देनेसे यह अपवित्र हो जायेगा। फिर यह कमंडलु जल गंगाजल कैसे हो सकता है? मुमुक्षुने कहा कि, महाराज! ईश्वरको साक्षी करके मैं सत्य कहता हूँ कि यह कमंडलुका जल गंगाजल ही है। कमंडलुके कारण ऐसा भेद मालूम पड़ता है। महात्माने कहा कि इसी प्रकार स्थूल सूक्ष्म कारण देहोंके कारण जीव ईश्वरमें भेद मालूम पड़ता है वास्तवमें आकाशवत् चेतन एक है, उपाधियोंके कारण नाना इव भासता हैं। जैसे अनेक जलपूर्ण घटोंके कारण एक सूर्य अनेक भासता है और निद्राके कारण एक स्वप्न-द्दष्टा स्वप्नमें नाना होकर भासता है उसी प्रकार माया और अविद्याके कारण एकही चेतन जीव और ईश्वर होकर भासता है।

वैराग्यका साधन क्या है, उसका स्वरुप व फल क्या है और उसकी अवधि क्या है ?

उत्तर—वैराग्यका साधन है विषयोंमें बारम्बार दोष दर्शन करना। विषयोंमें दोष दर्शन वही करेगा जिसको अशुचि क्षणभंगुर अनात्मा दु:ख-रुप शरीरसे छुटकारा पाने की सदा चिन्ता रहने लगी हो।

भक्षणके पहले अन्न अनात्मा स्पष्ट है फिर भक्षण कर लेने पर वही अन्न शरीर रुपमें परिणत हो जानेसे आत्मा कैसेहो जावेगा ? जब सत्संग द्वारा ऐसा विवेक होता है कि अन्नका परिणाम मल जैसा अशुचि अनात्मा है उसी प्रकार अस्थि-माँस मय देहभी अन्नका परिणाम होनेसे अशुचि अनात्मा है तब वैराग्य

यदि आप भगवानकी कृपाके पात्र बननेकी अभिलाषा हैं तो भगवान जिस स्थितिमैं रखें उसीसे सन्तुष्ट रहनेकी आदत डालो। जिस प्रकार वायुकी सहायतासे आग सूखे तृणकों नाश कर देती हैं। उसी प्रकार भगवानकी भक्ति चित्तकी वासनाओं और पापवृत्तिको नष्ट कर देती है।

होता है। परन्तु मूर्ख जैसे जबतक मलको त्याग नहीं करता तबतक उसको अपना स्वरूप जानता है और त्याग करने पर मल को अपनेसे पृथक् अशुचि अनात्मा जानता है उसी प्रकार मूर्ख जब तक देह को धारण किये रहता है तब तक देह को अपना स्वरूप मान कर अभिमान करता है परन्तु जब देहका त्याग करता है और उस मृत देह पर कुत्ते आक्रमण करते हैं और जबरदस्त कुत्ता सिर पर पैर रखकर अभिमान पूर्वक दूसरे कुत्तों को झिड़कता है तब यह मूर्ख उस मृत देहका अभिमान छोड़ देता है। यदि देहत्यागके पहले ही अभिमान छोड़ देता तो चौरासी लक्ष्य योनियोंसे मुक्त हो जाता। देह भिमानी मूर्ख कौओं और नालोके कीड़ेसे भी गये गुजरे है क्योंकि कौआ मलसे और नालीके कीट नालीके कीचड़से राग अवश्य करते हैं, परन्तु कौए मल को और कीट नालोको अपना स्वरूप समझकर अभिमान नहीं करते परन्तु मूर्ख मनुष्य मल और नालीसे भी बदतर देह को अपना स्वरूप मानकर अभिमान करते हैं। देहमें अहंभावके कारण ही दुःख रूप देहका भार जान नहीं पड़ता, रूईकी तरह हलका मालूम पड़ता है। देह त्याग करने पर अहंभाव देहसे निकल जाता है तब चार आदमी कठिनाईसे उठा पाते हैं। अतः देह अनित्य जड़ दुःखरूप अनात्मा है और 'मैं इस अशुचि देहसे विपरीत स्वभाव वाला हूँ' ऐसा विवेक वैराग्यका हेतु है। विषयोंके त्यागनेका निश्चय वैराग्यका स्वरूप है. विषयोंमें ग्लानि हो जाना वैराग्यका फल है और विषयों को वमनवत त्याग कर देना वैराग्यकी अवधि है।

यथा :—रमा विलास राम अनुरागी,
तजत वमन इव नर बड़भागी।

प्रश्न—ज्ञानका साधन वैराग्य, वैराग्यका साधन विवेक और विवेकका साधन सत्संग कहा गया है, परन्तु सत्संग का साधन क्या है ?

उत्तर—पुण्य पुंज बिनु मिलहिं न सन्ता,
सत्संगति संसृत कर अन्ता।

इस पर एक कथा है कि एक राजाकी लड़कोका अनेक बहुमूल्य लालोंमें गुथा हुआ हार खो गया। उस कुमारीने अपने पितासे कह दिया कि इस हार को खोजकर जो लायेगा उसीके साथ मैं अपनी शादी करूँगी। खोज करते करते वही हार एक नदीके अन्दर दिखाई पड़ा परन्तु गोता लगाने पर किसी को नहीं मिलता था। पंडितोंने राजा को सलाह दी कि आप उस नदोके किनारे जप यज्ञ दान पाठ कराइये, हार अवश्य मिलेगा। राजा एक बर्ष तक उस नदोके तट पर जप यज्ञ दान कथा कीर्तन कराता रहा परन्तु हार नदीमें केवल दिखाई पड़ता था, मिला नहीं। राजाने क्रोधमें आज्ञा दी कि कल यहाँके सब पंडितों को फाँसी दे दी जावेगी यदि कल तक हार न मिला। दूसरे दिन प्रातःकाल एक परम वीतराग परमहंस सन्त वहाँसे होकर निकला। राजाने उस सन्तकी श्रद्धा प्रेम सहित पूजाकी और हार न मिलनेकी कथा कह सुनाई।

सन्तने राजाको नदी तटपर ले जाकर एक दूरबीन दी और कहा कि प्रतिबिम्बित हार की सीधमें ऊपर पर्वतके शिखरके वृक्ष पर देखो। दूरबीनके द्वारा राजाको ज्ञात हो गया कि ऊपर शिखरके वृक्षकी एक शाखापर वही हार लटक रहा है और उसका प्रतिबिम्ब नदीमें पड़ रहा है। नदीमें सच्चा हार नहीं है, केवल हारकी छाया है।

राजाने वृक्षसे हार उतरवा लिया और अत्यन्त प्रसन्न हुआ। पुनः उसने सन्तसे पूछा कि पंडितोंको क्या दण्ड देना चाहिये क्योंकि इन्होंने लगातार वर्षभर व्यर्थमें नदीसे हार मिलने की आशामें जप,तप,व्रत, यज्ञ,दान, पाठ, कथा, कीर्तन करवाया। सन्तने उत्तर दिया कि उन पण्डितोंकी बहुत प्रकारसे पूजा और सेवा करो क्योंकि उनके बताये हुये जपादि पुण्यके फल से ही मेरा दर्शन हुआ और मेरे दर्शनके फल से दूरबीन द्वारा सच्चे हारका ज्ञान हुआ। तात्पर्य यह निकला कि परमानन्द रूप हारकी प्राप्ति ज्ञान रूपी दूरबीनसे होती है क्योंकि संसार रूपी नदीमें सच्चा आनन्द नहीं है, केवल आनन्दकी छाया है। ज्ञान रूपी दूरबीन सत्संगसे प्राप्त होती है और सत्संगकी प्राप्ति निष्काम धर्मपालनका फल हैं। अतः सत्संगके साधन सत्कर्म हैं।

प्रश्न—सुर दुर्लभ मनुष्य देह प्राप्त होनेपर जीवका क्या कर्तव्य है।

उत्तर—अथातो ब्रह्म जिज्ञासा। (ब्रह्मसूत्र १-१-१) कर्म उपासनासे अन्तःकरणको शुद्ध एकाग्र करनेके पश्चात् चतुष्टय साधन सम्पन्न होकर नित्य मोक्ष प्राप्तिके लिये मुमुक्षु जीवको ब्रह्म विचार करना कर्तव्य है क्योंकि अविद्याजनित होनेसे कर्मोंका फल नित्यमोक्ष नहीं हो सकता।

---

## समय कम है

भोग वैसे ही चंचल है जैसे ऊँची पानी की लहर, प्राण क्षणभरमें नाश होनेवाले हैं। प्रियाओंमें रमनेवाली जवानीके सुखकी स्फूर्ति दो-चार दिन की है। इसलिए हे ज्ञानी पण्डितों! इस अखिल संसारको निस्सार समझ लोकानुग्रहके विषयमें मनको अनुरक्त कर ब्रह्मध्यान करनेका प्रयत्न क्यों नहीं करते।

मनुष्योंकी आयु १०० वर्ष तककी परिमित है—उसका आधा भाग तो रातमें ही बीत जाता है। उस बाकीका आधा लड़कपन और बुढ़ापेमें चला जाता है। बाकी रोग, व्याधि, वियोग, दुःख आदिमें बीतता है। यह जीवन जल तरंगकी भाँति चंचल है इसमें प्राणियोंको सुख कहाँ? इस शरीरके नाश होनेके पूर्व ही अपने कल्याणके लिये शीघ्र यत्न कर लेना चाहिये। अन्यथा घरमें आग लगने पर कूआँ खोदनेवाली बात कैसी हास्यास्पद है!—भर्तृहरि

एक अंग्रेज साधु की दृष्टिमें

# कुम्भ मेला

—सूर्य साधु ( जार्ज फाउलर )—

⊙

जीवन, प्रकाश और प्रेमकी प्रेरक शक्ति सूर्यनारायणका भक्त तथा सूर्य-योगी होनेके नाते हरिद्वार कुम्भके पुण्यपर्व पर दूर-दूरसे स्नान करनेके लिए आये हुए यात्रियोंको देखकर मेरे मनमें जो भाव उत्पन्न हुए उन्हींको यहाँ अभिव्यक्त कर रहा हूँ। इस बारका कुम्भ बारह वर्ष पर लगा था। मेरे ( लेखकके ) लिए तो इसका और हो महत्व है। हमारे सूर्य भगवानके संक्रमणके कारण ही कुम्भपर्व लगता है। इस सूर्य साधुका भी जन्म ऐसे ही सूर्य संक्रमण-कालमें हुआ था।

मेरे मनमें उन लाखों तीर्थ-यात्रियोंके प्रति हार्दिक आदरभाव है जो एक विशेष निष्ठासे प्रेरित होकर इस पुण्यपर्वपर हरिद्वार आये हुए थे। अपने घरसे यहां तक आने-जानेमें उनको कितना कष्ट हुआ होगा, कितनी पीड़ा हुई होगी, एक प्रकारसे अधिकांश यात्रियोंके लिए यह नैष्ठिक परीक्षा ही रही है। कठिनाइयों और आपदाओंके बावजूद हजारों वर्षोंसे कुम्भ पर्वपर स्नानादि तथा अन्य धार्मिक कृत्योंका जो एक सिलसिला चलता आ रहा है, वह अभीतक चला जा रहा है। उसी सिलसिलेमें हरिद्वारमें इस बार लाखों यात्री आये और उन्होंने पवित्र गंगाजलमें स्नान कर अपने मनके कलुषको धोया।

तीर्थ-यात्रियोंके प्रति लेखकके मनमें जो घनी सहानुभूति तथा आदरभाव है, उसका सम्भवतः एक कारण लेखकका संस्कार है। यद्यपि इस वर्तमान जीवनकालमें लेखकका जन्म यूरोपमें हुआ तथा बादमें आस्ट्रेलिया चला गया तथापि इसको विश्वास है कि पूर्व-जन्मोंमें वह भारतवासी ही रहा है—एक नहीं अनेक जन्मोंमें। तब भारतके आध्यात्मिक, मानसिक और भौतिक उत्कर्षका काल था और तब भारतवासी ईश्वर और देवता-तुल्य होते थे एक दूसरेसे हार्दिक प्रेमभाव रखते पृथ्वीपर विचरण करते थे। वे दिन सत्य और आलोकके थे, सूर्यभगवान्के मन्दिरोंके दिन थे। दुःख है, आज वे दिन नहीं रहे, न वे मन्दिर रहे। दानवी शक्तियोंका उदय हो जानेसे वे गौरव-चिन्ह अब रह नहीं गये। इस कलियुगमें मनुष्यकी बर्बरतापूर्ण तामस प्रवृत्तियोंके कारण जो स्थिति उत्पन्न हो गयी है उसको अज्ञान और आतङ्ककी संज्ञा दी जाती है। अज्ञानकी इन शक्तियोंका भी समय पूरा हो चला है। इनका अन्त निकट है। परमाणुयुगके उदय तथा इसके साथ ही सर्वसंहारक शस्त्रास्त्रोंके निर्माणसे मनुष्य सर्वदाके लिए एक किनारे पहुँच जायगा।

## जहां गंगा बहती है!

भारतकी परम पवित्र गंगा अपनेमें आतिथ्य-सत्कारकी उच्चतम भावना तथा कलु-

पविनाशिनी एवं स्वास्थ्यकरी शक्तियों को समेटे हरिद्वारमें झर-झर बहती रहती है। वह उन नैष्ठिक भक्तों और तीर्थ-यात्रियोंका आव-भगत करती है जो थके-मांदे हैं, जो धूलि-धूसरित हैं और जो प्याससे आकुल हैं। वह हर एकसे मिलती है, स्वागत करती है और यही तो वह अनन्त कालसे करती आ रही है। जह्नु-सुता गङ्गा भगवान् विष्णुकी चरणदासी है जो अपने निर्झर-स्वरोंमें उन्हींके गुणोंका गान करती बढ़ती जा रही है। क्या यही हम सब भी नहीं कर रहे हैं ?

नीचे कलकलनिनादिनी वेगवती गङ्गा बह रही है और ऊपर परमपिता परमेश्वर है, ऐसा ध्यान कर हम लोग अमृततोया गङ्गामें डुबकिया लगाते हैं। स्नानसे निवृत्त होकर हम लोग गङ्गाके सुन्दर तटबन्ध पर बैठ जाते तथा यौगिक आसनध्यानमें निमग्न होकर हम ऊपर की ओर निहारने लग जाते— उस 'नारायण' के एकनिष्ठ चिन्तनमें लग जाते—जो अनन्त और अखण्ड है।

## अनेकतामें एकता

कुम्भ पर्व ज्यों-ज्यों निकट आता गया त्यों-त्यों ट्रेनोंसे आनेवाले यात्रियोंकी भीड़ उत्तरोत्तर बढ़ती गयी—ऐसी भीड़ जिसका ओर-न छोर आदि-न अन्त। हमने विभिन्न रंगों और वेशभूषाओंमें स्वामी, साधु, ब्रह्मचारी नागा, फक़ीर तथा संन्यासियोंको देखा, जिनका अन्त नहीं था। बहुतों को नग्न देखा—दिग-म्बर ! बहुत ऐसे दिखाई पड़े जिन्होंने अपने शरीरको चित्रित कर रखा था। ऐसे भी लोग थे जिन्होंने भस्म लगाकर अपनी एक अलग शोभा बना रखी थी। किन्तु, भेष या अभेषका प्रकार भले ही कुछ हो, सबके भीतर एक ही मुख्य लक्ष्य था, एक ही भावना बह रही थी। सबका एक अभिप्राय था। जैसे एक सूत्रमें पिरोये गये दाने एकतामें आबद्ध रहते हैं, उसी तरह यहां अनेकतामें एकता दिखाई पड़ी। सभीके भीतर जो एक सामान्य भाव उद्वेलित हो रहा था, वह पापमोचिनी गङ्गामें स्नान करनेका था और स्नानके बाद भगवान सूर्यकी किरणोंके नीचे धूप सेवनका था— उन्हीं भगवान सूर्यके नीचे, जो जीवन और आलोक-के प्रदाता हैं।

## रंग-रंगीली शोभायात्रा

कुम्भ पर्वपर साधु-संन्यासियोंकी एक नहीं, अनेक शोभायात्राएँ निकलीं, सभी अपनेमें अपूर्व। शोभायात्राएँ प्राचीन नगरकी प्रदक्षिणा करतीं। हर शोभायात्रामें अनेक प्रकारके गाजे-बाजे होते, नरसिंहा और नफ़री बजती। कुम्भ पर्वपर सर्वोपरि श्रेष्ठ तिथि मेष संक्रान्तिकी थी—१३ अप्रैलकी। उस दिन भारतकी महान् विभूति आनन्दमयी माँके नेतृत्वमें शोभायात्रा निकली। आनन्दमयी मां 'रानी' नामक हस्तिनी पर श्वेत निर्मल परिधानमें आवेष्टित विराजमान थीं। हाथियोंमें 'रानी' बहुत ही बुद्धिमती और सुन्दरी थी। लेखकका उस रानीसे अत्यधिक अनुराग हो गया था। प्रतिदिन तड़के हम लोग उस रानीसे मिलते थे, उसके अस्थायी हाथीखानेमें और उससे बातें करते थे। 'रानी' के विशाल मस्तकपर सूर्यका प्रतीक चित्रित

था। जब कोई 'रानी' के सुन्दर स्वरूपको देखकर कहता—'रानी! तुम तो बहुत ही सुन्दर प्रकृति-पुत्री हो, तुमको ओम् नमस्कार!' तब रानी प्रेमविह्वल भावसे अपनी सूंड़ ऊपर उठाकर स्पष्ट स्वरोंमें 'ओम्' चिग्घाड़ उठती। स्पष्ट उच्चारणके लिए रानी प्रसिद्ध है। अपने इस भौतिक सुन्दर शरीरको त्यागनेके बाद रानी पुनः मनुष्यरूपमें ही जन्म लेगी, ऐसा हमारा विश्वास है। हाथीमें ऐसे बहुतसे गुण हैं जिनका मनुष्य अनुकरण कर अपना तथा विश्वका कल्याण कर सकता है।

## रक्तहीन कुम्भ

जहाँ तक कुम्भ मेलेके प्रबन्धका प्रश्न है, समग्र रूपमें मेलेका प्रबन्ध बुद्धिमानीपूर्वक नियोजित था। इस बार शायद ही किसीको कष्ट पहुँचा हो या चोट लगी हो। विशाल जनसमूह शान्त था, आतंककी कहीं कोई बात नहीं थी। जनसेवा करनेमें रेलवेके कर्मचारियोंने प्रशंसनीय कार्य किया। यह सही है कि इस कार्यमें उनको परेशानियाँ हुईं, यात्रियोंको कुछ कष्ट भी हुआ हो, किन्तु जब हम इस विशाल कार्यको देखते हैं तब हमें भारतीय रेल सेवाकी प्रशंसा ही करनी पड़ती है। सचमुच भारतीय रेलने जनताकी बड़ी सेवा की। पुलिसने भी अपना कर्तव्यपालन बड़ी तत्परता और सुन्दर ढंगसे किया, यद्यपि उससे कभी-कभी लोग तंग भी आ जाते थे।

ऐसी घटनाएँ भी स्मृति-पटपर आ रही हैं जब लोग भीड़में कस जाते थे, बुरी तरह फँस जाते थे, किन्तु वे भाग्यवान थे जो उस भीड़से निरापद निकल आये। १३ अप्रैलको मेष-संक्रान्तिपर हमलोग गंगा स्नानके लिए गंगाके सामने घाटपर जानेके लिये सवेरे ७ बजकर १५ मिनटपर रवाना हुए। जिस स्थानसे हमलोग प्रस्थित हुए वहाँसे गंगातट केवल दो फर्लाङ्ग रहा है, किन्तु इतनी दूरी तय करनेमें हमलोगोंको घनी भीड़को चीरकर जानेमें करीब चार मीलका चक्कर काटना पड़ा और इसमें चार घण्टे लगे तब कहीं पुल नम्बर २ के दर्शन हुए। सामान्य स्थितिमें इतनी दूरी पैदल १५ मिनटमें तयकी जाती है।

## साधुओं की जमात

वास्तविक साधुओंकी जमातपर जरा गंभीरतासे विचार करना होगा। आखिर, मेला मुख्यतः साधुओंके सम्मेलनका ही होता है। साधुओंकी संख्या काफी रही है। हर प्रकारसे उनका दर्शन प्रभावकर था—खासकर दिगम्बर या नागा साधुओंका। कोई-कोई नागा साधु खूँखार दिखाई पड़ता। उनके सिरपर जटिल केशराशि बँधी होती। इस प्रकारके साधुओंकी संख्या बहुत बड़ी थी, हजारोंमें थी। इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि इनमें अधिकतर सच्चे योगी या सन्यासी रहे हैं। प्रायः सभीके सभी मनोवैज्ञानिक रूपसे मुक्त थे। उनको किसी बातकी चिन्ता नहीं, दुनियादारीसे मतलब नहीं गृहस्थीकी परवाह नहीं। निस्सन्देह हर वस्तुका अपना मूल्य होता है। साधुओंकी इस स्वतंत्रता का अपना एक त्यागमय पक्ष है। सभी आध्यात्मिक विकासमें त्यागकी अपेक्षा होती है क्योंकि आध्यात्मिक विकासके लिए सौकुमार्यकी जरूरत

नहीं होती। ये सारी क्रियायें जीवन-मोक्षके लिये की जातीं है।

शोभायात्राओंमें साधुनियों और सन्यासिनियोंको देखकर आश्चर्य भी होता था, प्रसन्नता भी। मेष-संक्रान्तिके स्नान पर्वपर हमने एक शोभा यात्रामें १॥ हजारसे भी अधिक साधुनियों-सन्यासिनियोंको देखा। जो कभी श्रृंगार और शीशेतक अपनेको सीमित रखती रही हैं, आज ये सारी चीजें इनके जीवनसे दूर जा चुकी हैं। अब न इनके ओठोंपर लाली है, न बालोंमें कंघी, न जूड़ा। इनके बदले अब इनके सिरपर जटाजूट है, जो खोलनेपर जमीन छूने लगते हैं। ज्ञानकी खोजमें इनकी कौटुम्बिक भावनाएँ. जाति और बिरादरी सबकी सब समाप्त हो चुकी है। प्रभुसत्ताकी खोजमें इन्होंने सबका त्याग किया, सबसे नाता तोड़ा। इन्होंने एक बाना अपनाया, प्रकृतिसे सम्बन्ध जोड़ा और सादे जीवनके मार्गका अवलम्बन किया। इन्होंने भगवान सूर्यको अपना आराध्य देव माना और उनके पंचभूत 'क्षितिजल पावक गगन समीर'के तत्त्वको समझा। इनमेंसे अनेक को इस मार्गपर चलनेमें सुखकी अनुभूति होती है। कुछको आत्म-बोधके सन्तोषजनक पथपर चलनेमें इसीसे बल प्राप्त होता है। रास्ते अनेक हो सकते हैं, किन्तु सभीका लक्ष्य-गन्तव्य एक ही है। इन साधुनियों और सन्यासिनियोंने मुट्ठीभर भौतिक भोजनपर रहना सीख लिया। बन्दर या हनुमानकी तरह इन लोगोंने भी बनके पेड़-पौधोंसे अपना शाखा-सम्बन्ध स्थापितकर लिया है।

हमने ऐसे अनेक परमहंस देखे जिनको भोजनकी जरूरत नहीं होती। वे भगवान सूर्य से अपना प्रत्यक्ष सम्बन्ध जोड़ते है। ऐसे परमहंस कुम्भ पर्वपर नहीं दिखाई पड़ते और अगर दिखाई भी दे जायँ तो सामान्य साधु उनको पहचान भी नहीं पाते। अब भी ऐसे स्वामी लोग है जो सच्चे अर्थमें योगी हैं, जीवनके सच्चे मार्ग दर्शक-शिक्षक है।

## सद्गुरु बाबा शारदाराम जी उदासीनपुरी में

सन्त शिरोमणि बाबाजो नेमी प्रेमा भक्तों पर महती कृपा कर आजकल उदासीनपुरी कप्तानगंज आजजमढ़में विराज रहे हैं। नित्य दर्शनार्थी आर्त,दुखी, श्रद्धालु जनोंका ताँता लगा हुआ है। अनेकों जन नित्य दर्शन सत्संग कर अपनी मनोकामना पूर्ण कर रहे हैं। यहाँ आने वाला प्रत्येक दुःखी व्यक्ति महाराजजी की चमत्कारी विभूतिकी कामना रखता है। ऐसी आशा है कि बाबाजी अभी मई मासके अन्तिम सप्ताह तक कप्तानगंजमें स्थान करेंगे। उसके बाद काशी, दिल्ली होते हुये कल्यान जानेकी सम्भावना है।

—o—

श्री भद्रसेन वैद्य द्वारा कल्पना प्रेस वाराणसी में मुद्रित और प्रकाशित।

सद्गुरु बाबा शारदाराम मुनि जी महाराज कृत

# पवित्र ग्रन्थ

## परम सुख, शान्ति और मुक्ति-भुक्ति के साधन हैं।

| | | |
|---|---|---|
| १ — निर्गुण महारामायण | ... मूल्य | ५.०० रु० |
| २ — शारदारामीय भागवत किरण | ... ,, | ११.०० रु० |
| ३ — राम रावण तत्व विचार | ... ,, | १.०० रु० |
| ४ — बावन अक्षरी आत्म प्रकाश | ... ,, | .७५ न० पै० |
| ५ — पंचरतनी प्रासादिक दोहावली | ... ,, | .७५ न० पै० |
| ६ — भक्ति रसानन्द त्रिसंध्या | ... ,, | .६२ न० पै० |
| ७ — ॐ ब्रह्म सुमिरिनी | ... ,, | .१२ न० पै० |
| ८ — ॐ जप मुक्तावली | ... ,, | .२० न० पै० |
| ९ — मुक्ति सोपान | ... | निःशुल्क |
| १० — मुक्ति-भुक्ति केन्द्र भजनावली | ... ,, | १.०० रुपये |



बाबा शारदाराम जी का जीवन चरित्र— ( हिन्दी भाषा ) ४.०० रुपये
बाबा शारदाराम जी का जीवन चरित्र—( गुरुमुखी भाषा) ५.०० रुपये



## इसके अतिरिक्त हर प्रकार की धार्मिक आध्यात्मिक पवित्र पुस्तकों के लिये लिखिये

## शारदा प्रतिष्ठान

सी. के. १९/५१ सुड़िया, बुलानाला, वाराणसी-१